CHRONICLE
Nurturing Talent Since 1990

10 वर्ष (2016-2025)

अध्यायवार

समाजशास्त्र

आईएएस मुख्य परीक्षा प्रश्नोत्तर रूप में

हल प्रश्न-पत्र

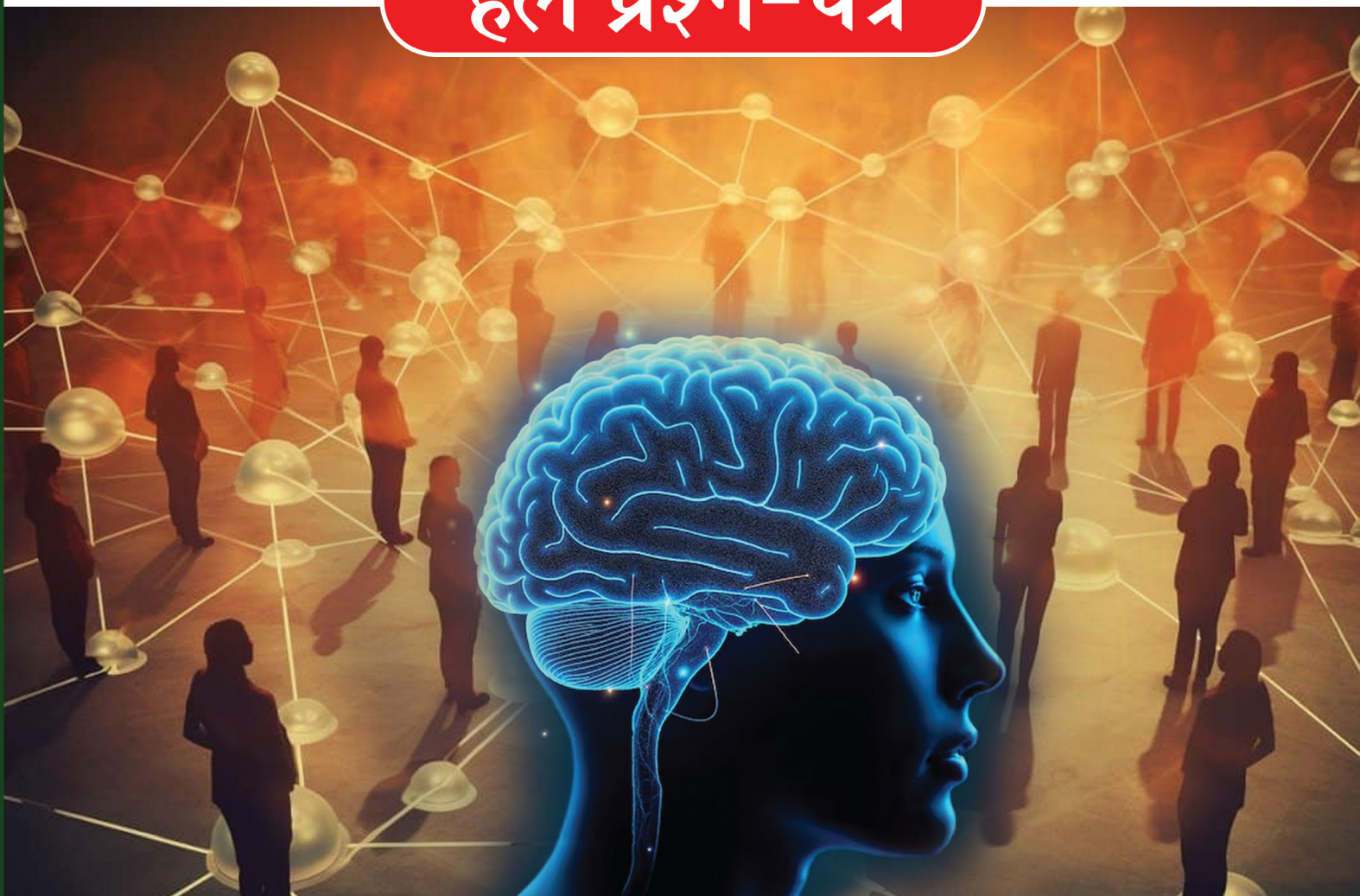

10 वर्ष (2016-2025)

अध्यायवार

समाजशास्त्र

आईएएस मुख्य परीक्षा प्रश्नोत्तर रूप में

हल प्रश्न-पत्र

यह पुस्तक संघ लोक सेवा आयोग की सिविल सेवा मुख्य परीक्षा के वैकल्पिक विषय के साथ-साथ राज्य लोक सेवा आयोगों की मुख्य परीक्षाओं तथा अन्य समकक्ष प्रतियोगी परीक्षाओं हेतु भी समान रूप से उपयोगी है।

संपादकः एन. एन. ओझा

हलः क्रॉनिकल संपादकीय समूह

CHRONICLE
Nurturing Talent Since 1990

अनुक्रमणिका

प्रथम प्रश्न-पत्र

1. **समाजशास्त्रः विद्याशाखा..... 1-16**
   - क) यूरोप में आधुनिकता एवं सामाजिक परिवर्तन तथा समाजशास्त्र का अविर्भाव
   - ख) समाजशास्त्र का विषय-क्षेत्र एवं अन्य सामाजिक विज्ञानों से इसकी तुलना
   - ग) समाजशास्त्र एवं सामान्य बोध।

2. **समाजशास्त्रः विज्ञान के रूप में..... 17-30**
   - क) विज्ञान, वैज्ञानिक पद्धति एवं समीक्षा
   - ख) अनुसंधान क्रिया विधि के प्रमुख सैद्धांतिक तत्व
   - ग) प्रत्यक्षवाद एवं इसकी समीक्षा
   - घ) तथ्य, मूल्य एवं उद्देश्यपरकता
   - ड़) प्रत्यक्षवादी क्रियाविधियां

3. **अनुसंधान पद्धतियां एवं विश्लेषण..... 31-48**
   - क) गुणात्मक एवं मात्रात्मक पद्धतियां
   - ख) दत्त संग्रहण की तकनीक
   - ग) परिवर्तन, प्रतिचयन, प्राक्कल्पना, विश्वसनीयता एवं वैधता

4. **समाजशास्त्री चिंतक..... 49-80**
   - क) कार्ल मार्क्स- ऐतिहासिक भौतिकवाद, उत्पादन विधि, विसंबंधन, वर्ग संघर्ष
   - ख) इमाईल दुखीम- श्रम विभाजन, सामाजिक तथ्य, आत्महत्या, धर्म एवं समाज।
   - ग) मैक्स वेबर- सामाजिक क्रिया, आदर्श प्रारूप, सत्ता, अधिकारीतंत्र, प्रोटेस्टेंट नीति शास्त्र और पूंजीवाद की भावना।
   - घ) टैल्कॉट पार्सन्स-सामाजिक व्यवस्था, प्रतिरूप परिवर्त
   - ड़) राबर्ट के मर्टन-अव्यक्त तथा अभिव्यक्त प्रकार्य अनुरूपता एवं विसामान्यता, संदर्भ समूह
   - च) मीड- आत्म एवं तादात्म्य

5. **स्तरीकरण एवं गतिशीलता..... 81-95**
   - क) संकल्पनाएं-समानता, असमानता, अधिक्रम, अपवर्जन, गरीबी एवं वंचना
   - ख) सामाजिक स्तरीकरण के सिद्धांत - संरचनात्मक प्रकार्यवादी सिद्धांत, मार्क्सवादी सिद्धांत, वेबर का सिद्धांत
   - ग) आयाम-वर्ग, स्थिति समूहों, लिंग, नृजातीयता एवं प्रजाति का सामाजिक स्तरीकरण
   - घ) सामाजिक गतिशीलता-खुली एवं बंद व्यवस्थाएं, गतिशीलता के स्रोत एवं कारण

6. **कार्य एवं आर्थिक जीवन..... 96-107**
   - क) विभिन्न प्रकार के समाजों में कार्य का सामाजिक संगठन-दास समाज, सामंती समाज, औद्योगिक/पूंजीवादी समाज
   - ख) कार्य का औपचारिक एवं अनौपचारिक संगठन
   - ग) श्रम एवं समाज

7. **राजनीति और समाज..... 108-119**
   - क) सत्ता के समाजशास्त्रीय सिद्धांत
   - ख) सत्ता प्रव्रजन, अधिकारीतंत्र, दबाव समूह, राजनैतिक दल
   - ग) राष्ट्र, राज्य, नागरिकता, लोकतंत्र, सिविल समाज, विचारधारा
   - घ) विरोध, आंदोलन, सामाजिक आंदोलन, सामूहिक क्रिया, क्रांति

8. **धर्म एवं समाज..... 120-129**
   - क) धर्म के समाजशास्त्रीय सिद्धांत
   - ख) धार्मिक क्रम के प्रकार : जीववाद, एकतत्ववाद, बहुतत्ववाद, पंथ, उपासना, पद्धतियां
   - ग) आधुनिक समाज में धर्म : धर्म एवं विज्ञान, धर्म निरपेक्षीकरण, धार्मिक पुनः प्रवर्तनवाद, मूलतत्ववाद

9. **नातेदारी की व्यवस्थाएं..... 130-140**
   - क) परिवार, गृहस्थी, विवाह
   - ख) परिवार के प्रकार एवं रूप
   - ग) वंश एवं वंशानुक्रम
   - घ) पितृतंत्र एवं श्रम का लिंगाधारिक विभाजन
   - ड़) समसामयिक प्रवृत्तियां

10. **आधुनिक समाज में सामाजिक परिवर्तन..... 141-161**
    - क) सामाजिक परिवर्तन के समाजशास्त्रीय सिद्धांत
    - ख) विकास एवं पराश्रितता
    - ग) सामाजिक परिवर्तन के कारक
    - घ) शिक्षा एवं सामाजिक परिवर्तन
    - ड़) विज्ञान प्रौद्योगिकी एवं सामाजिक परिवर्तन

द्वितीय प्रश्न-पत्र

भारतीय समाज : संरचना एवं परिवर्तन

भारतीय समाज का परिचय

1. **भारतीय समाज के अध्ययन के परिप्रेक्ष्य.....162-172**
   क) भारतीय विद्या (जी एस धुर्ये)
   ख) संरचनात्मक प्रकार्यवाद (एम.एन. श्रीनिवास)
   ग) मार्क्सवादी समाजशास्त्र (ए.आर. देसाई)
2. **भारतीय समाज पर औपनिवेशिक शासन का प्रभाव..... .....173-176**
   क) भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि
   ख) भारतीय परंपरा का आधुनिकीकरण
   ग) औपनिवेशिककाल के दौरान विरोध एवं आंदोलन
   घ) सामाजिक सुधार

सामाजिक संरचना

3. **ग्रामीण एवं कृषिक सामाजिक संरचना.....177-186**
   क) भारतीय ग्राम का विचार एवं ग्राम अध्ययन
   ख) कृषिक सामाजिक संरचना-पट्टेदारी प्रणाली का विकास, भूमि सुधार
4. **जाति व्यवस्था.....187-198**
   क) जाति व्यवस्था के अध्ययन के परिप्रेक्ष्य (जी.एस. धुर्ये, एम एन श्रीनिवास, लुईद्यूमां, आंद्रे बेतेय)
   ख) जाति व्यवस्था के अभिलक्षण
   ग) अस्पृश्यता-रूप एवं परिप्रेक्ष्य
5. **भारत में जनजातीय समुदाय.....199-207**
   क) परिभाषीय समस्याएं
   ख) भौगोलिक विस्तार
   ग) औपनिवेशिक नीतियां एवं जनजातियां
   घ) एकीकरण एवं स्वायत्ता के मुद्दे
6. **भारत में सामाजिक वर्ग.....208-214**
   क) कृषिक वर्ग संरचना
   ख) औद्योगिक वर्ग संरचना
   ग) भारत में मध्यम वर्ग
   घ) परंपरागत भारतीय सामाजिक संगठन
7. **भारत में नातेदारी की व्यवस्थाएं.....215-226**
   क) भारत में वंश एवं वंशानुक्रम
   ख) नातेदारी व्यवस्थाओं के प्रकार
   ख) भारत में परिवार एवं विवाह
   घ) परिवार घरेलू आयाम
   ड़) पितृतंत्र, हकदारी एवं श्रम का लिंगाधारित विभाजन
8. **धर्म एवं समाज.....227-234**
   क) भारत में धार्मिक समुदाय
   ख) धार्मिक अल्पसंख्यकों की समस्याएं

भारत में सामाजिक परिवर्तन

9. **भारत में सामाजिक परिवर्तन की दृष्टियां.....235-251**
   क) विकास आयोजना एवं मिश्रित अर्थव्यवस्था का विचार
   ख) संविधान, विधि एवं सामाजिक परिवर्तन
   ग) शिक्षा एवं सामाजिक परिवर्तन
   घ) महिला और समाज
10. **भारत में ग्रामीण एवं कृषि रूपांतरण.....252-262**
   क) ग्रामीण विकास कार्यक्रम, समुदाय विकास कार्यक्रम, सहकारी संस्थाएं, गरीबी उन्मूलन योजनाएं
   ख) हरित क्रांति एवं सामाजिक परिवर्तन
   ग) भारतीय कृषि में उत्पादन की बदलती विधियां
   घ) ग्रामीण मजदूर, बंधुआ एवं प्रवासन की समस्याएं
11. **भारत में औद्योगिकरण एवं नगरीकरण.....263-276**
   क) भारत में आधुनिक उद्योग का विकास
   ख) भारत में नगरीय बस्तियों की वृद्धि
   ग) श्रमिक वर्ग : संरचना, वृद्धि, वर्ग संघटन
   घ) अनौपचारिक क्षेत्रक, बाल श्रमिक
   ड़) नगरी क्षेत्र में गंदी बस्ती एवं वंचन
12. **राजनीति एवं समाज.....277-285**
   क) राष्ट्र, लोकतंत्र एवं नागरिकता
   ख) राजनैतिक दल, दबाव समूह, सामाजिक एवं राजनैतिक प्रव्रजन
   ग) क्षेत्रीयतावाद एवं सत्ता का विकेन्द्रीकरण
   घ) धर्म निरपेक्षीकरण
13. **आधुनिक भारत में सामाजिक आंदोलन.....286-297**
   क) कृषक एवं किसान आंदोलन
   ख) महिला आंदोलन
   ग) पिछड़ा वर्ग एवं दलित वर्ग आंदोलन
   घ) पर्यावरणीय आंदोलन
   ड़) नृजातीयता एवं अभिज्ञान आंदोलन
14. **जनसंख्या गतिकी.....298-305**
   क) जनसंख्या आकार, वृद्धि संघटन एवं वितरण
   ख) जनसंख्या वृद्धि के घटक : जन्म, मृत्यु, प्रवासन
   ग) जनसंख्या नीति एवं परिवार नियोजन
   घ) उभरते हुए मुद्दे : काल प्रभावन, लिंग अनुपात, बाल एवं शिशु मृत्यु दर, जनन स्वास्थ्य
15. **सामाजिक रूपांतरण की चुनौतियां.....306-316**
   क) विकास का संकट : विस्थापन, पर्यावरणीय समस्याएं एवं संपोषणीयता
   ख) गरीबी, वंचन एवं असमानताएं
   ग) स्त्रियों के प्रति हिंसा
   घ) जाति द्वंद्व
   ड़) नृजातीय द्वंद्व, सांप्रदायिकता, धार्मिक पुनः प्रवर्तनवाद
   च) असाक्षरता तथा शिक्षा में समानताएं

1

प्रथम प्रश्न-पत्र

समाजशास्त्र: विद्याशाखा

प्रश्न: सामान्य बुद्धि क्या है? सामान्य ज्ञान और समाजशास्त्र एक-दूसरे से कैसे सम्बन्धित है? व्याख्या कीजिए।
(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2025)

उत्तर: सामान्य ज्ञान वह दैनिक जीवन से प्राप्त साधारण समझ है जिसके आधार पर लोग अपने अनुभवों और परिस्थिति को समझते हैं। सामान्य ज्ञान पर आधारित व्याख्याएँ आमतौर पर 'प्राकृतिक' या व्यक्तिवादी तर्कों पर आधारित होती हैं, जो बिना किसी सवाल के स्वीकार कर ली जाती हैं।

- सामान्य दृष्टिकोण से गरीबी को आलसी व्यवहार का परिणाम माना जाता है, जबकि एक समाजशास्त्री इसे संरचनात्मक असमानताओं और बाधाओं के रूप में देखता है।
- समाजशास्त्र का सामान्य ज्ञान से लम्बे समय से संबंध रहा है, और इसकी शुरुआत से ही इसे केवल सामान्य ज्ञान का विस्तृत रूप माना जाता रहा है।

सामान्य ज्ञान और समाजशास्त्र के बीच संबंध

- समाजशास्त्र में अवधारणाएँ तैयार करते समय सामान्य ज्ञान को ध्यान में रखा जाता है। सामान्य ज्ञान समाजशास्त्रियों को परिकल्पना (hypothesis) बनाने में सहायता करता है।
- सामान्य ज्ञान समाजशास्त्रीय अनुसंधान के लिए आरंभिक अवधारणा उपलब्ध कराता है। समाजशास्त्र अक्सर उन प्रश्नों का उत्तर देता है जो सामान्य ज्ञान से उत्पन्न होते हैं। उदाहरण के लिए, लैंगिकता (gender) पर सामान्य धारणाओं का समाजशास्त्र में व्यापक अध्ययन किया जाता है।
- सामान्य ज्ञान समाजशास्त्र को उसकी निष्कर्षों को चुनौती देकर भी समृद्ध करता है।
- एंथनी गिडेन्स के अनुसार, कई बार समाजशास्त्रीय ज्ञान स्वयं सामान्य ज्ञान का हिस्सा बन जाता है। उदाहरण के लिए, विवाह-विच्छेद पर समाजशास्त्रीय शोध ने लोगों में यह धारणा बना दी है कि विवाह एक जोखिमभरी व्यवस्था है।
- जब समाजशास्त्र सकारात्मकतावाद (positivism) की ओर बढ़ा, तो सामान्य ज्ञान को लगभग नजरअंदाज कर दिया गया।
- इसके विपरीत, प्रतिपॉजिटिववादी (anti-positivists) विचारधारा ने सामान्य ज्ञान को फिर से महत्व देने का प्रयास किया। इसलिए, दोनों के बीच संबंध गतिशील है और कई बार एक-दूसरे को मजबूत भी करता है।

निष्कर्ष

समाजशास्त्रियों का सामान्य ज्ञान के प्रति दृष्टिकोण समय के साथ बदलता गया। जब समाजशास्त्र दर्शनशास्त्र के निकट था, तब सामान्य ज्ञान को पूरक माना जाता था। बाद में, अनुशासन के विकसित होने के साथ दोनों के बीच संबंध और भी जटिल एवं बहुआयामी बन गया।

प्रश्न: अध्ययन क्षेत्र और पद्धति के सन्दर्भ में समाजशास्त्र और इतिहास के मध्य क्या सम्बन्ध (समानताएँ एवं विभिन्नत् है? विवेचना कीजिए।
(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2025)

उत्तर: इतिहास और समाजशास्त्र के बीच अत्यंत निकट संबंध है। जी. ई. हॉवर्ड के अनुसार– "इतिहास, भूतकाल का समाजशास्त्र है और समाजशास्त्र वर्तमान का इतिहास है।" दर्शनशास्त्र और इतिहास को सभी सामाजिक विज्ञानों की जननी माना जाता है।

- कार्ल मार्क्स और ईमाइल दुर्खाइम ने अपने समाजशास्त्रीय विश्लेषण में ऐतिहासिक तथ्यों का व्यापक उपयोग किया। कार्ल मार्क्स का ऐतिहासिक भौतिकवाद उत्पादन के विभिन्न रूपों के ऐतिहासिक विकास पर आधारित है।
- वेबर की कृति 'प्रोटेस्टेंट एथिक एंड द स्पिरिट ऑफ कैपिटलिज्म' में भी एक ऐतिहासिक-विशिष्ट आदर्श प्रकार का उपयोग किया गया है। पित्रिम सोरोकिन की कृति 'सोशल एंड कल्चरल डायनामिक्स' में भी ऐतिहासिक संदर्भों का पर्याप्त उपयोग किया गया है।

दोनों विषयों में अंतर

- **इतिहासकार सामान्यत:** अतीत का अध्ययन करते हैं, जबकि समाजशास्त्री मुख्यत: वर्तमान और निकट भूतकाल में रुचि रखते हैं।
- इतिहासकार पहले वास्तविक घटनाओं का क्रम जानने और यह समझने में संतुष्ट थे कि वास्तव में क्या हुआ, जबकि समाजशास्त्रियों का उद्देश्य घटनाओं के कारण सम्बन्ध स्थापित करना था।
- इतिहास वास्तविक घटनाओं के ठोस विवरण का विश्लेषण करता है, जबकि समाजशास्त्री ठोस वास्तविकताओं से सामान्यीकरण और श्रेणीकरण करते हैं।
- इतिहास मुख्यत: वर्णनात्मक (descriptive) है, जबकि समाजशास्त्र में मानकात्मक (normative) तत्व भी पाए जाते हैं।

2 समाजशास्त्र: विज्ञान के रूप में

प्रश्न: विज्ञान क्या है? क्या आपको लगता है कि प्राकृतिक विज्ञानों में प्रयोग की जाने वाली विधियों को समाजशास्त्र में उपयोग किया जा सकता है? अपने उत्तर के समर्थन में कारण बताइए। (सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2025)

उत्तर: विज्ञान को संक्षेप में इस प्रकार बताया जा सकता है कि – यह अनुभवजन्य जाँच की प्रणालीगत विधियों, आँकड़ों के विश्लेषण, सैद्धांतिक चिंतन और तर्कपूर्ण मूल्यांकन के प्रयोग द्वारा किसी विशेष विषय के बारे में ज्ञान का एक संगठित शरीर विकसित करने की प्रक्रिया है। यह परिभाषा सामाजिक विज्ञानों की तुलना में प्राकृतिक विज्ञानों के अधिक निकट मानी जाती है।

वैज्ञानिक पद्धति (Scientific Method)

- वैज्ञानिक पद्धति से तात्पर्य सत्य या नए ज्ञान की खोज, किसी घटना की जाँच-पड़ताल, या पूर्व ज्ञान के संशोधन और एकीकरण के लिए अपनाए जाने वाले किसी भी व्यवस्थित, तार्किक और वस्तुनिष्ठ चरणों से है।
- यह सामान्यत: प्राकृतिक विज्ञानों से जुड़ी है और पदार्थ के व्यवहार को संचालित करने वाले नियमों की खोज इसकी मुख्य विशेषता है। विशेष रूप से, यह परिभाषा से शुरू होकर परिकल्पना निर्माण, परीक्षण आदि चरणों की शृंखला है।
- किसी प्रक्रिया को वैज्ञानिक कहलाने के लिए यह आवश्यक है कि वह अनुभवजन्य (empirical), माप योग्य (measurable) और विशिष्ट तार्किक सिद्धांतों पर आधारित हो।
- कारण और प्रभाव संबंध स्थापित करने के लिए प्राकृतिक विज्ञानों में वैज्ञानिक पद्धति नियंत्रित परिस्थितियों में प्रयोगशाला प्रयोगों का उपयोग करती है, जिसमें चर (variables) को बदला जा सकता है।

लंबे समय तक किसी भी विधा को ष्वैज्ञानिकष् माने जाने का मापदंड ये रहे हैं–

अंतर-विषयक विश्वसनीयता (Inter-subjective Reliability) – यदि अन्य शोधकर्ता उसी अध्ययन को दोहराएँ, तो वे समान परिणाम प्राप्त कर सकें।

- वस्तुनिष्ठता (Objectivity)
- मात्रात्मकता (Quantifiability)
- सार्वभौमिक परीक्षणयोग्यता और सैद्धांतिक उन्मुखता (Universal testability - theoretical orientation)

समाजशास्त्र में वैज्ञानिक पद्धति

- 19वीं शताब्दी में समाजशास्त्रियों में वैज्ञानिक पद्धति लोकप्रिय हुई क्योंकि उस समय प्रारंभिक समाजशास्त्री विज्ञान के प्रति अत्यधिक आकर्षित थे।
- बाद में यह तर्क दिया गया कि समाजशास्त्र में वैज्ञानिक पद्धति उतनी उपयुक्त नहीं है, क्योंकि समाजशास्त्र मनुष्यों का अध्ययन करता है–जिनमें चेतना होती है और वे प्रकृति की वस्तुओं की तरह बाहरी उद्दीपनों से पूर्णत: संचालित नहीं होते।

इस कारण, समाजशास्त्र में वैज्ञानिक पद्धति के प्रयोग से समस्याएँ पैदा होती हैं, जैसे–

- प्रेक्षक पूर्वाग्रह (observer bias)
- उत्तर न देने का पूर्वाग्रह (non-response bias)
- सामाजिक वांछनीयता पूर्वाग्रह (social desirability bias)

वैज्ञानिक पद्धति और विज्ञान की आलोचना

1. **सीमांकन और संभाव्यता (Karl Popper):** कार्ल पॉपर ने The Logic of Scientific Enquiry में कहा कि वैज्ञानिकता को परिभाषित करने की प्रक्रिया में स्वयं "सीमांकन" की समस्या होती है–क्या वैज्ञानिक है और क्या नहीं। उनके अनुसार वैज्ञानिक सिद्धांत "पूर्ण सत्य" नहीं होते, बल्कि संभाव्यता पर आधारित होते हैं।
2. **नियंत्रित प्रयोगों की सीमाएँ:** समाजशास्त्र में प्राकृतिक विज्ञानों की तरह नियंत्रित प्रयोगशाला प्रयोग करना संभव नहीं, इसलिए कारण – प्रभाव संबंध स्थापित करना कठिन है। इस कारण समाजशास्त्र में "सार्वभौमिक स्थायी नियमों" की खोज नहीं की जा सकती।
3. **मूल्य-निर्णयों का प्रभाव:** समाजशास्त्रीय अनुसंधान पर शोधकर्ता के मूल्य-निर्णयों का प्रभाव पड़ता है। अत: समाजशास्त्र में वैज्ञानिक पद्धति का प्रयोग करके पूर्ण वस्तुनिष्ठ परिणाम प्राप्त नहीं किया जा सकता।
4. **विज्ञान एक नया धर्म:** एडोर्नो का मत था कि विज्ञान रचनात्मकता को सीमित करता है। विज्ञान एक नए "धर्म" जैसा बनकर मानव स्वतंत्रता को बाधित करता है, जबकि सामाजिक विज्ञान का उद्देश्य मानव स्वतंत्रता को समझना है।
5. **प्रतिबंध और मात्रात्मकता की समस्या:** वैज्ञानिक पद्धति शोधकर्ताओं की पसंद–नापसंद को सीमित कर देती है, जबकि समाजशास्त्रीय अनुसंधान मुक्त होना चाहिए। साथ ही मानव व्यवहार के कई पहलू मात्रात्मक नहीं किए जा सकते।
6. **वस्तुनिष्ठता का अभाव:** सामाजिक विज्ञानों में पूर्ण वस्तुनिष्ठता संभव नहीं क्योंकि यहाँ मानव मन, भावनाएँ और अर्थ–निर्माण की प्रक्रिया शामिल होती है।
7. **वेबर का दृष्टिकोण – अर्थ एवं समझ (Verstehen) :** वेबर ने कहा कि समाजशास्त्र में मानव क्रियाओं को समझने के लिए उनके पीछे के अर्थ को जानना आवश्यक है। इसलिए समाज का पूर्णत: वस्तुनिष्ठ और वैज्ञानिक अध्ययन संभव नहीं है।

3 अनुसंधान पद्धतियां एवं विश्लेषण

प्रश्नः सामाजिक अनुसन्धान में चर क्या है? इनके विभिन्न प्रकार क्या हैं? विस्तार से समझाइए।

(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2025)

उत्तरः चर (Variables) वे पैरामीटर हैं जिनका मान परिस्थितियों के बदलने पर बदलता रहता है और ये किसी भी प्रयोग या शोध के मुख्य घटक होते हैं।

चर के प्रकार (Types of Variables)

सामान्यतः चर दो प्रकार के होते हैं–

- आश्रित चर (Dependent Variables)
- स्वतंत्र या निश्चित चर (Independent Variables)

आश्रित चर का मान स्वतंत्र चर तथा अन्य आश्रित चर के मान पर निर्भर करता है।

चर का वर्गीकरण (Classification of Variables)

चर को आगे निम्न प्रकारों में भी वर्गीकृत किया जा सकता है–

- प्रयोगात्मक चर (Experimental Variables)
- मापे जाने वाले चर (Measured Variables)
- असतत चर (Discrete Variables)
- सतत चर (Continuous Variables)

आश्रित चर बनाम स्वतंत्र चर

1. **आश्रित चर (Dependent Variable):** किसी भी अध्ययन में जो चर मापा जाता है, वह सामान्यतः आश्रित चर होता है। उदाहरणः किसी क्षेत्र के शैक्षिक स्तर का अध्ययन करते समय 'शिक्षा स्तर' एक आश्रित चर है, क्योंकि यह माता-पिता की आय, उपलब्ध विद्यालय, शिक्षकों की गुणवत्ता, सांस्कृतिक मूल्य आदि जैसे कई अन्य चर पर निर्भर करता है।
2. **आश्रित चर का परिस्थितिजन्य परिवर्तनः** एक परिस्थिति में आश्रित चर, दूसरी परिस्थिति में स्वतंत्र चर की भूमिका निभा सकता है। उदाहरणः बेरोजगारी के कारणों के अध्ययन में शिक्षा स्तर स्वतंत्र चर हो सकता है, जबकि बेरोजगारी आश्रित चर बन जाती है।

चर की भूमिका एवं पारस्परिक संबंध

किसी भी सामाजिक प्रयोग में शोधकर्ता को सबसे पहले चरों की पहचान करनी होती है और यह निर्धारित करना होता है कि कौन-सा चर आश्रित है और कौन-सा स्वतंत्र। इसके बाद, इन चरों के बीच परस्पर संबंध (inter-linkages) स्थापित किए जाते हैं।

प्राकृतिक विज्ञान बनाम समाज विज्ञान में चर विश्लेषण का अंतर

- प्राकृतिक विज्ञानों में नियंत्रित परिस्थितियों (controlled settings) में चरों के बीच संबंध स्थापित करना आसान होता है क्योंकि वहाँ स्वतंत्र चरों का मान बदलकर आश्रित चरों पर उसका प्रभाव सीधे तौर पर देखा जा सकता है।
- लेकिन समाजशास्त्र में इस प्रकार के प्रत्यक्ष नियंत्रण उपलब्ध नहीं होते। इसलिए अप्रत्यक्ष प्रयोगों (indirect experimentations) की विधियाँ अपनाई जाती हैं।

बहु-चर विश्लेषण (Multivariate/Variable Analysis)

चरों के बीच संबंधों का अध्ययन एवं विश्लेषण करने की विधि को बहु-चर विश्लेषण कहा जाता है। समाजशास्त्र में इसका प्रारंभिक उपयोग एमिल दुर्खीम ने अपनी आत्महत्या पर आधारित अध्ययन में किया था, जहाँ उन्होंने धर्म, लिंग, वैवाहिक स्थिति आदि स्वतंत्र चरों के प्रभाव को आत्महत्या जैसे आश्रित चर के संदर्भ में अध्ययन किया।

निष्कर्ष

इस प्रकार, किसी भी शोध में प्रत्येक चर को उसके प्रभाव एवं महत्व के अनुसार उचित वजन (weightage) दिया जाना आवश्यक है, ताकि आश्रित चरों पर उनके प्रभाव का सही आकलन किया जा सके।

प्रश्नः सामाजिक अनुसन्धान के सन्दर्भ में निदर्शन से आप क्या समझते हैं? निदर्शन के विभिन्न प्रारूपों पर उनके सापेक्ष लाभ और हानि के साथ चर्चा कीजिए।

(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2025)

उत्तरः सैम्पलिंग (Sampling) सामाजिक अनुसंधान में उपयोग की जाने वाली एक विधि है, जिसके माध्यम से बड़े जनसमूह (population) से एक प्रतिनिधि समूह (sample) चुना जाता है। इसका उद्देश्य समय और धन की बचत करते हुए प्रभावी ढंग से डेटा एकत्र करना है। जब पूरे जनसमूह का अध्ययन करना संभव न हो, तब सामान्यीकरण (generalizability) सुनिश्चित करने के लिए सैम्पलिंग अत्यंत आवश्यक हो जाती है।

- सैम्पलिंग की अवधारणा किसी भी शोध के परिणामों की वैधता (validity) और विश्वसनीयता (reliability) सुनिश्चित करने में सबसे महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

मुख्य रूप से सैम्पलिंग दो प्रकार की होती हैः

A. प्रायिकता (Probability) सैम्पलिंग

1. **सरल यादृच्छिक सैम्पलिंग (Simple Random Sampling)**

विधिः प्रत्येक इकाई के चुने जाने की संभावना बराबर होती है (जैसे–मतदाताओं की सूची से चिट निकालना)।

फायदेः

- बड़े स्तर पर सामान्यीकरण संभव

4

समाजशास्त्री चिंतक

प्रश्नः मार्क्स द्वारा प्रतिपादित ऐतिहासिक भौतिकवाद की मुख्य विशेषताओं पर प्रकाश डालिए। समकालीन समाजों को समझने में यह सिद्धान्त किस सीमा तक प्रासंगिक है? व्याख्या कीजिए। (सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2025)

उत्तरः 'ऐतिहासिक भौतिकवाद' समाज की उस अवधारणा को दर्शाता है जिसके अनुसार इतिहास एक अवस्था से दूसरी अवस्था में क्रमशः विकसित होता है, जिसे मार्क्स "उत्पादन की विधियाँ" कहते हैं। इस विकास में भौतिक या आर्थिक कारकों की निर्णायक भूमिका होती है। यह मनुष्य-मनुष्य तथा मनुष्य-वस्तु संबंधों का अध्ययन है जो इतिहास के क्रम में परिवर्तित होते रहते हैं।

ऐतिहासिक भौतिकवाद की मुख्य विशेषताएँ

- **भौतिकवादी आधारः** आर्थिक संरचना (उत्पादन की पद्धति–उत्पादन के साधन व उत्पादन संबंध) ही समाज की अधिरचना (कानून, राजनीति, धर्म, विचारधारा) को निर्धारित करती है। उदाहरणतः सामंती कृषि-आधारित अर्थव्यवस्था ने अभिजात्य राजनीतिक-सामाजिक संरचना को जन्म दिया।
- **द्वंदात्मक प्रगतिः** इतिहास विरोधाभासों के द्वंद्वात्मक विकास की कहानी है-मात्रात्मक परिवर्तनों से गुणात्मक परिवर्तन उत्पन्न होते हैं। 'थीसिस' और 'एंटीथीसिस' के संघर्ष से 'सिंथेसिस' उत्पन्न होता है। जैसे-पूँजीवाद के अंतर्विरोध उसके संकट को जन्म देते हैं।
- **वर्ग-संघर्षः** "अब तक के समस्त इतिहास का इतिहास वर्ग-संघर्षों का इतिहास है।" (कम्युनिस्ट घोषणापत्र, 1848) बुर्जुआ बनाम सर्वहारा-इसी संघर्ष ने दासप्रथा, सामंतवाद और पूँजीवाद को पार करते हुए समाजवादी परिवर्तन को जन्म दिया।
- **विकास की अवस्थाएँः** आदिम साम्यवाद, प्राचीन दासप्रथा, सामंतवाद, पूँजीवाद, समाजवाद, साम्यवादः हर व्यवस्था अपने विनाश के बीज अपने भीतर ही रखती है।
- **विमूचन व चेतनाः** पूँजीवाद में श्रमिक विमूचन का शिकार होता है जिससे मिथ्या चेतना पैदा होती है। परन्तु 'प्रेक्सिस' (क्रांतिकारी क्रिया) द्वारा वर्ग-चेतना विकसित होती है और परिवर्तन संभव होता है।

वर्तमान समाज के संदर्भ में प्रासंगिकता

- वैश्विक पूँजीवाद के संकटों को ऐतिहासिक भौतिकवाद कैसे समझाता है
- ऐतिहासिक भौतिकवाद नवउदारवादी अन्यायों को स्पष्ट करता है। (उदाहरणः ऑक्सफैम 2023 रिपोर्ट – विश्व की कुल संपत्ति का 43% केवल शीर्ष 1% लोगों के पास है।)
- गिग इकॉनॉमी में काम करने वाले श्रमिकों के शोषण को यह दृष्टिकोण उजागर करता है।
- लाभ-केन्द्रित उत्पादन प्रणाली की विरोधाभासी प्रवृत्तियों के कारण पर्यावरण के निरंतर क्षरण को भी यह समझाता है।
- समाजशास्त्रीय दृष्टि से यह बताता है कि शहरी भारत में वित्तीयकरण (Financialization) किस प्रकार व्यापक विमुखता (Alienation) पैदा कर रहा है।

सामाजिक समस्याओं की समझ

- वर्ग आधारित विश्लेषण का उपयोग कर श्रमिक आंदोलनों, सामाजिक असंतोष और वैश्वीकरण-विरोधी प्रयासों को बेहतर ढंग से समझा जा सकता है।
- उदाहरणः 2020-21 के भारतीय किसान आंदोलन – जो कृषि क्षेत्र में कॉरपोरेट हस्तक्षेप एवं आर्थिक आधार में बदलाव (जैसे WTO नीतियाँ) के खिलाफ एक प्रतिरोध रूप में उभरा।

भारतीय संदर्भः

- भौतिकवादी दृष्टिकोण जाति-वर्ग संबंधों को समझाने में अत्यंत उपयोगी है।
- 1991 के उदारीकरण (Neoliberal Reforms) के बाद दलित वर्ग का मजदूरीकरण (Proletarianization) तेजी से बढ़ा – इस तथ्य को अंबेडकर-मार्क्सवादी विमर्श द्वारा स्पष्ट किया गया है।

आलोचनाएँ

- आर्थिक कारकों पर अत्यधिक बल-सांस्कृतिक, लैंगिक, नस्लीय पहलू उपेक्षित
- नई सामाजिक पहचानों (जैसे-#MeToo, LGBTQ+) को केवल वर्ग-आधारित दृष्टि से नहीं समझा जा सकता
- वैश्विक दक्षिण की बहु-आयामी वास्तविकताओं को यूरोकेन्द्रित ढाँचा सीमित रूप से समझा पाता है
- ग्राम्शी के अनुसार सांस्कृतिक वर्चस्व भी परिवर्तनकारी कारक है, जो मार्क्सवाद का विस्तार करता है

ऐतिहासिक भौतिकवाद आज भी वैश्विक असमानताओं, डिजिटल पूँजीवाद, पर्यावरणीय संकट आदि को समझने हेतु अत्यंत प्रभावी रूपरेखा है।

प्रश्नः मोस्का, मिशेल्स और परेटो के अभिजात वर्ग के सिद्धान्तों में समानताओं और विभिन्नताओं को आप किस रूप में पहचानेंगे? इनके मुख्य बिन्दुओं पर चर्चा कीजिए।
(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2025)

उत्तरः ये सिद्धांत गैएटानो मोस्का, रॉबर्ट माइकल्स और विलफ्रेडो पारेतो द्वारा प्रतिपादित किए गए हैं, जो यह स्पष्ट करते हैं कि समाज में सत्ता किस प्रकार केंद्रित होती है।

5 स्तरीकरण एवं गतिशीलता

प्रश्न: क्या सामाजिक स्तरीकरण का सिद्धान्त लैंगिक रूप से अंधा है? स्पष्ट कीजिए। (सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2025)

उत्तर: सामाजिक स्तरीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें सामाजिक असमानताएँ संरचनात्मक, पदानुक्रमित रूपों में मौजूद रहती हैं, जहाँ एक स्तर दूसरे के ऊपर स्थित होता है। सटरलैंड और मैक्सवेल के अनुसार, यह "ऐसी विभेदन प्रक्रिया है जो कुछ लोगों को दूसरों की तुलना में ऊँचे स्तर पर स्थापित करती है।" स्तरीकरण को एक सामाजिक प्रक्रिया (social phenomenon) तथा एक पद्धति (mental construct) - दोनों रूपों में देखा जाता है।

सामाजिक स्तरीकरण के सिद्धांत:

- **मार्क्स:** उन्होंने वर्ग (बर्से) पर ध्यान केंद्रित किया-अर्थात आर्थिक शक्ति और उत्पादन के साधनों के बीच संबंध पर। उन्होंने लैंगिक (gender) असमानता को गौण मुद्दा मानकर लगभग बाहर रखा।
- **वेबर:** उन्होंने वर्ग, प्रतिष्ठा (status) और शक्ति (power) को सामने रखा, परंतु लैंगिक आयाम को अपने सिद्धांतों में शामिल नहीं किया।
- **बॉर्दीयू:** उन्होंने सांस्कृतिक और सामाजिक पूँजी (cultural & social capital) को केंद्र में रखा, किंतु लैंगिक प्रश्नों पर बहुत कम विचार किया।

सामाजिक स्तरीकरण सिद्धांतों के लैंगिक-अंध (Gender-blind) पहलू

- **वर्ग-केंद्रित दृष्टिकोण:** अधिकांश सिद्धांत आर्थिक ढाँचे पर केंद्रित रहे और लैंगिक भेदभाव को व्यापक वर्ग-संघर्ष का हिस्सा माना (जैसे-महिलाओं का दमन पूँजीवाद का परिणाम बताया गया)।
- **सार्वभौमिक अनुभव का मानना:** इन ढाँचों ने यह माना कि एक ही वर्ग के लोगों के अनुभव समान होते हैं; इसलिए महिलाओं की विशिष्ट असमानताओं-विशेषकर बिना वेतन वाले घरेलू कार्य-को अनदेखा किया गया।
- **अंतर्विभेदीकरण (Intersectionality) की उपेक्षा:** लैंगिकता को जाति, नस्ल, समुदाय, विकलांगता आदि से जोड़कर देखने का प्रयास बहुत सीमित रहा। उदाहरण: भारत में विकलांग महिलाओं को झेलने वाली बहुविध असमानताओं को सिद्धांतों में पर्याप्त स्थान नहीं मिला।

लैंगिक-संवेदनशील नवीन विकास

- **वॉल्बी और कॉलिन्स:** इन विद्वानों ने पितृसत्ता (patriarchy) और अंतर्विभेदीकरण (intersectionality) को विश्लेषण का महत्वपूर्ण आधार बनाया तथा कहा कि लैंगिकता स्वयं में एक स्वतंत्र स्तरीकरण-अक्ष है।
- **सिल्विया वॉल्बी का पितृसत्ता सिद्धांत:** उन्होंने परिवार, कार्यस्थल जैसी लैंगिक संस्थाओं पर प्रकाश डाला और दिखाया कि स्त्री-पुरुष असमानता केवल वर्ग आधारित नहीं है।
- **किम्बर्ले क्रेंशॉ:** उन्होंने जाति, वर्ग और लैंगिकता की परतों के संयुक्त प्रभाव पर जोर दिया। उदाहरण: रंगभेद झेलने वाली महिलाओं को सामान्य महिलाओं की तुलना में कम वेतन मिलता है।
- जेंडर गैप रिपोर्ट 2024 (विश्व आर्थिक मंच):
  - ❖ वैश्विक स्तर पर आय में औसतन 21% लैंगिक अंतर अभी भी मौजूद है।
  - ❖ कॉर्पोरेट बोर्ड में महिलाओं की भागीदारी केवल 26% है।

ये असमानताएँ केवल वर्ग-आधारित विश्लेषण से समाप्त नहीं हो सकतीं।

निष्कर्ष

यद्यपि पारंपरिक सिद्धांत सामाजिक संरचनाओं की मूलभूत समझ प्रदान करते हैं, परंतु वे मूल रूप से लैंगिक-अंध रहे हैं। नारीवादी चिंतन ने यह स्थापित किया कि लैंगिकता एक स्वतंत्र और व्यापक स्तरीकरण प्रणाली है, जिसे वर्ग या अन्य आयामों के पीछे नहीं रखा जा सकता। भविष्य के सामाजिक विश्लेषण एवं नीति-निर्माण के लिए आवश्यक है कि वर्ग, लैंगिकता, जाति, नस्ल आदि सभी पहचानों को एक समग्र ढाँचे में शामिल किया जाए।

प्रश्न: क्या सामाजिक स्तरीकरण पर संरचनात्मक प्रकार्यात्मक परिप्रेक्ष्य यथास्थिति को बढ़ावा देता है? अपने उत्तर के लिए कारण बताइए। (सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2025)

उत्तर: संरचनात्मक प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण, जो मुख्यत: एमिल दुर्खाइम, टैल्कॉट पार्सन्स और रॉबर्ट मर्टन द्वारा विकसित किया गया, समाज को परस्पर संबंधित अंगों की एक प्रणाली मानता है, जहाँ संस्थाएँ और संरचनाएँ अपनी-अपनी भूमिकाएँ निभाकर सामाजिक संतुलन और व्यवस्था बनाए रखती हैं।

सामाजिक स्तरीकरण (Social Stratification):

समाज का वर्णन इस दृष्टि से किया जाता है कि लोग धन, शक्ति और प्रतिष्ठा के आधार पर एक पदानुक्रम (Hierarchy) में व्यवस्थित होते हैं।

स्तरीकरण पर प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण:

- **डेविस-मूर सिद्धांत (Davis-Moore Thesis):** किंग्सले डेविस और विल्बर्ट मूर का तर्क है कि सामाजिक स्तरीकरण अवश्यंभावी और आवश्यक है, क्योंकि समाज को जटिल भूमिकाओं के कुशल

6 कार्य एवं आर्थिक जीवन

प्रश्न: विकासशील समाजों की अर्थव्यवस्था में अनौपचारिक क्षेत्र के समाजशास्त्रीय महत्त्व का आलोचनात्मक विश्लेषण कीजिए। (सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2025)

उत्तर: अनौपचारिक क्षेत्र (Informal Sector) में वह आर्थिक गतिविधियाँ शामिल होती हैं, जो औपचारिक नियमन के बिना संचालित होती हैं, जिनमें धन का लेन-देन अपेक्षाकृत छोटे पैमाने पर होता है। इसमें सड़क पर व्यापार, घरेलू कामकाज और सूक्ष्म उद्यम जैसी गतिविधियाँ शामिल हैं। इस क्षेत्र में प्रवेश और निकास के लिए कम बाधाएँ होती हैं और इसमें औपचारिक अनुबंध की आवश्यकता नहीं होती।

अवौपचारिक क्षेत्र कई विकासशील समाजों में एक महत्वपूर्ण आर्थिक और सामाजिक सुरक्षा जाल के रूप में कार्य करता है; यह कार्यरत जनसंख्या का बड़ा हिस्सा समेटता है, लेकिन साथ ही यह आर्थिक शोषण की परिस्थितियाँ भी पैदा कर सकता है।

विकासशील समाजों में अवौपचारिक क्षेत्र का समाजशास्त्रीय महत्व

आर्थिक योगदान और सामाजिक समावेशन के रूप

- **रोजगार का स्रोत:** अवौपचारिक क्षेत्र कई हाशिए पर रहने वाले समूहों को रोजगार प्रदान करता है, जिन्हें औपचारिक अर्थव्यवस्था में शामिल होने का अवसर नहीं मिलता; छोटे पैमाने के काम लाखों निम्न-आय वर्ग के भारतीयों के लिए आय का आधार बनते हैं, जैसे सड़क विक्रेता, रिक्शा चालक और निर्माण मजदूर।
- **सामाजिक समावेशन:** अवौपचारिक क्षेत्र के माध्यम से महिलाएँ, प्रवासी और कम-कुशल श्रमिक (जैसे स्वयं सहायता समूहों या स्थानीय बैंक समूहों की महिलाओं) अपनी आर्थिक क्षमता बढ़ा सकते हैं।
- **सामाजिक गतिशीलता:** अवौपचारिक रोजगार कौशल विकास और उद्यमशीलता तक पहुँच बढ़ाता है, जैसे छोटे पैमाने के उद्यम।
- **सामाजिक पूँजी:** स्लम क्षेत्रों में सामाजिक नेटवर्क और सामुदायिक बचत समूहों के माध्यम से ज्ञान का आदान-प्रदान भरोसा बढ़ाता है, सामुदायिक कौशल विकसित करता है और आर्थिक झटकों के दौरान जोखिम प्रबंधन में मदद करता है।

सामाजिक स्तरीकरण की पुनः पुष्टि

- **श्रमिकों का शोषण:** अधिकांश श्रमिक जो निम्न जातियों या हाशिए पर रहने वाले समुदायों से आते हैं, वे निम्न वेतन के कारण शोषित होते हैं।
- **लिंग असमानताएँ:** घरेलू कामकाज में महिलाएँ पुरुषों की तुलना में 30% कम कमाती हैं (Oxfam India, 2023), जिससे पितृसत्तात्मक असमानताएँ बनी रहती हैं।
- **वर्गीय विभाजन:** सामाजिक सुरक्षा प्रणाली की अनुपस्थिति इन श्रमिकों को गरीबी के चक्र में रखती है, जिससे शिक्षा और ऊपर उठने के अवसर प्राप्त करना कठिन हो जाता है।
- **गिग अर्थव्यवस्था:** अवौपचारिक क्षेत्र आधुनिक समस्याओं का स्रोत बन गया है, जहाँ विभिन्न प्लेटफार्मों पर कार्यरत श्रमिक (जैसे Uber चालक) अल्गोरिदमिक शोषण और रोजगार असुरक्षा का सामना करते हैं।

सांस्कृतिक और सामाजिक गतिशीलता

- **सांस्कृतिक संरक्षण:** स्थानीय बाजार और शिल्पकार पारंपरिक कौशल को जीवित रखते हैं (जैसे हथकरघा बुनाई) और संस्कृति के उन क्षेत्रों को पुनर्जीवित और सुदृढ़ करते हैं।
- **शहरीकरण के खतरे:** सस्ती और आसानी से उपलब्ध वस्तुओं के माध्यम से वैश्विक संस्कृति और उपभोक्तावाद का प्रसार धीरे-धीरे स्थानीय कला और विरासत को कमजोर कर रहा है।
- **सांस्कृतिक अनुकूलन:** अवैध व्यापार के माध्यम से प्रवासी शहरी अर्थव्यवस्था से जुड़ते हैं, जैसे धारावी में छोटे उद्योग।
- **सामाजिक संबंध:** अवौपचारिक क्षेत्र सामाजिक संबंध बनाता है, लेकिन जातिवाद जैसी अपवर्जनकारी प्रथाओं के कारण पहुँच पर रोक भी लगती है।

चुनौतियाँ और नीति में अंतर

- **नियमन की कमी:** कानूनी पहचान की अनुपस्थिति से क्रेडिट तक पहुँच नहीं मिलती, जिससे सूक्ष्म उद्यमों का विकास धीमा होता है।
- **नीति की विफलताएँ:** स्ट्रीट वेंडर्स एक्ट (2014) विक्रेताओं की सुरक्षा के लिए है; फिर भी केवल 10% ही पंजीकृत हैं (MoHUA, 2023), जिससे नीतियों और उनके कार्यान्वयन के बीच अंतर दिखता है।
- **प्रौद्योगिकी का विघटन:** स्वचालन अवौपचारिक नौकरियों के लिए खतरा बन गया है, भविष्य में इन कर्मचारियों को नई क्षमताओं में पुनः प्रशिक्षित करना आवश्यक होगा।
- **सुरक्षा की कमी:** पेंशन, स्वास्थ्य बीमा या किसी कानूनी समर्थन की अनुपस्थिति श्रमिकों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति को और कमजोर और असुरक्षित बनाती है।

इस प्रकार, अवौपचारिक क्षेत्र अभी भी कम विकसित देशों में आवश्यक आर्थिक उपकरण और सामाजिक समावेशन का माध्यम है; फिर भी यह असमानताओं और कमजोर परिस्थितियों को बनाए रखने का भी कारण बनता है।

7

राजनीति और समाज

प्रश्नः क्या दबाव समूह लोकतन्त्र के लिए एक खतरा है या एक आवश्यक तत्त्व? उपयुक्त उदाहरणों के साथ व्याख्या कीजिए। (सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2025)

उत्तरः दबाव समूह वे संगठन हैं जो विशिष्ट हितों को बढ़ावा देने और सरकार की नीतियों को प्रभावित करने के लिए बनाए जाते हैं, लेकिन वे चुनाव में भाग लेने के लिए नहीं बनते। भारत में, ट्रेड यूनियन, किसान संगठन और एनजीओ शासन और प्रतिनिधित्व को प्रभावित करते हैं, और उनके प्रभावों पर महत्वपूर्ण बहस होती है।

लोकतंत्र में दबाव समूहों की महत्वपूर्ण भूमिकाः

- **हाशिए पर पड़े समूहों की आवाजः** दबाव समूह उन वर्गों की आवाज बनते हैं जिन्हें पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं मिलता। उदाहरण के लिए, भारतीय किसान यूनियन (BKU) 2020-21 के किसान आंदोलन में अग्रणी थी, जिसने सरकार को हालिया कृषि कानूनों को रद्द करने के लिए मजबूर किया।
- **नीति सुधारः** दबाव समूह अक्सर विशिष्ट विषयों पर सुझाव देते हैं। उदाहरण के लिए, सेंट्रल फॉर साइंस एंड एनवायरनमेंट (CSE) ने भारत की पर्यावरण नीतियों में बदलाव लाने और सतत विकास पर ध्यान केंद्रित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।
- **सरकार पर निगरानीः** दबाव समूह जनता की ओर से सरकारी जवाबदेही सुनिश्चित करने में कार्य कर सकते हैं। उदाहरण के लिए, एसोसिएशन फॉर डेमोक्रेटिक रिफॉर्म्स (ADR) ने चुनावों में पारदर्शिता सुनिश्चित करने के लिए मतदाताओं की जानकारी तक पहुंच का अधिकार दिलाने में योगदान दिया।
- **बहुलवाद (Pluralism):** विविध हितों का सामूहिक प्रतिनिधित्व लोकतांत्रिक समावेशन को परिभाषित करता है।

दबाव समूहों के लोकतंत्र के लिए संभावित खतरे

- **अत्यधिक प्रभावः** कुछ दबाव समूह नीति को असंतुलित तरीके से प्रभावित कर सकते हैं। उदाहरण के लिए, टेलीकॉम उद्योग की लॉबी को यह आरोप लगाया गया कि उन्होंने सरकार की नीतियों को प्रभावित किया बिना समाज के कमजोर वर्गों को ध्यान में रखे।
- **मतदाता या शासन में ध्रुवीकरणः** बड़े पैमाने पर प्रदर्शन या विघटन करने वाले दबाव समूह शासन की वैधता और समाज के सभी वर्गों का प्रतिनिधित्व चुनौती दे सकते हैं।
- **असमान प्रतिनिधित्वः** अधिक संसाधनयुक्त और मजबूत समूह कमजोर समूहों पर हावी हो सकते हैं। उदाहरण के लिए, एनजीओ अक्सर शहरी क्षेत्रों में संगठित होते हैं और ग्रामीण या घुमंतू समुदायों की तुलना में अधिक संसाधन रखते हैं।
- **लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं को दरकिनार करनाः** गैर-संसदीय दबाव या ट्रेड यूनियन हड़तालें (जैसे AITUC) निर्वाचित संस्थाओं की शक्ति को बाधित कर सकती हैं।

भारत में दबाव समूहों की संतुलित भूमिका

- **संवैधानिक सुरक्षाः** अनुच्छेद 19(1)(c) सभी दबाव समूहों को कानूनी रूप से संचालित होने का अधिकार देता है। हालांकि, विदेशी फंड प्राप्त करने वाले एनजीओ पर विदेशी योगदान (नियमन) अधिनियम 2010 (FCRA) जैसी नियमावली लागू है।
- **न्यायिक नियंत्रणः** सुप्रीम कोर्ट अत्यधिक लॉबिंग के मामलों में हस्तक्षेप कर सकता है, जैसे कि 2G स्पेक्ट्रम आवंटन में।
- **लोकतंत्र की गहराई बढ़ानाः** कार्य समूह और संगठन (जैसे मजदूर किसान शक्ति संगठन-MKSS) नागरिकों को जुटाकर नई कानून व्यवस्था लागू करने में मदद करते हैं, जैसे कि सूचना का अधिकार (RTI) अधिनियम, 2005।

निष्कर्षः

दबाव समूह लोकतंत्र को लाभ पहुंचा सकते हैं या उसे चुनौती भी दे सकते हैं। वे प्रतिनिधित्व, जवाबदेही और नीति निर्माण में गहराई बढ़ाने के लिए मूल्यवान हैं। जैसे BKU और ADR ने दिखाया। बेहतर नियामक ढांचे और लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं के माध्यम से दबाव समूह समाज के लिए समावेशी और प्रभावी वकालत कर सकते हैं, जबकि उनसे जुड़े जोखिमों का सावधानीपूर्वक प्रबंधन करना आवश्यक है।

प्रश्नः आप डिजिटल युग में सामाजिक आन्दोलनों के महत्त्व का आकलन कैसे कर सकते हैं? व्याख्या कीजिए। (सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2025)

उत्तरः सामाजिक आंदोलन एक सतत् सामूहिक प्रयास होता है, जिसका उद्देश्य सामाजिक परिवर्तन लाना या मौजूदा संस्थाओं के दायरे के बाहर बदलाव का विरोध करना होता है।

डिजिटल युग में सामाजिक आंदोलनों का महत्व

- **संगठन और पहुँच में वृद्धिः** तेजी से प्रचारः ऑनलाइन प्लेटफॉर्म्स के उपयोग ने परिदृश्य को पूरी तरह बदल दिया है क्योंकि अब किसी भी व्यक्ति के लिए किसी भी स्थान से किसी मुद्दे का समर्थन करना बहुत आसान हो गया है। इसका उदाहरण #MeTooIndia आंदोलन है, जो अत्यंत सफल रहा और इसके कारण POCSO संशोधन हुआ।
- **हाशिए पर रहने वाले समूहों के लिए समावेशिताः** वे समूह जिनकी आवाज हमेशा दबाई जाती रही है, अब अपनी आवाज

8

धर्म एवं समाज

प्रश्न: आधुनिक समाज में विज्ञान और धर्म के बीच सम्बन्ध की प्रकृति क्या है? उपयुक्त उदाहरणों के साथ इसका विश्लेषण कीजिए। (सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2025)

उत्तर: मानव के चारों ओर हमेशा प्रश्न और उलझनें रही हैं और उसने इनके उत्तर या तो धर्म या विज्ञान में खोजे। इस प्रकार, दोनों ही पूरक ज्ञान का भंडार बने। सामान्य रूप से यह माना जाता है कि धर्म विज्ञान से पहले अस्तित्व में आया।

क्लासिकल विकासवादी समाजशास्त्रियों का दृष्टिकोण:

विकास को धर्म, जादू और विज्ञान की एक शृंखला के रूप में देखा जाता है:

- **ऑगस्ट कॉम्ट (Auguste Comte):** कॉम्ट के अनुसार, समाज एक धार्मिक (थियोलॉजिकल) चरण से सकारात्मक (पोसीटिविस्ट) चरण की ओर बढ़ता है। उनके अनुसार, परंपरागत समाजों में धर्म प्रमुख होता है और आधुनिक समाजों में विज्ञान प्रमुख होता है।
- **लॉरी टेलर (Laurie Taylor):** उन्होंने विज्ञान को और अधिक महिमामंडित किया और इसे अविनाशी तथा आधुनिकता की आत्मा बताया।
- **हर्बर्ट स्पेंसर (Herbert Spencer):** एक अन्य विकासवादी सिद्धांतकार, उन्होंने भी धर्म और विज्ञान को विरोधी ध्रुवों पर देखा। जैसे-जैसे समाज विकसित होता है, विज्ञान आधुनिक धर्म बन जाता है। अपनी पुस्तक 'Magic, Science and Religion and Other Essays, 1954' में उन्होंने ट्रोब्रियैंड द्वीपवासियों के अनुभव का उल्लेख करते हुए पवित्र और सांसारिक का अंतर दर्शाया।
- **ब्रोनिस्लाव कास्पर मलिनोव्स्की (Bronisław Kasper Malinowski):** उनके अनुसार, विज्ञान, कला, शिल्प और ट्रोब्रियैंड द्वीपवासियों की आर्थिक गतिविधियाँ 'सांसारिक' का उदाहरण हैं।

विज्ञान और धर्म में अंतर:

- विज्ञान जिज्ञासु और विचारशील है, जबकि धर्म कल्पनाशील और सैद्धांतिक है।
- विज्ञान मनुष्य को अपनी नियति गढ़ने की ओर प्रेरित करता है, धर्म उसे भाग्यवाद की ओर ले जाता है।
- विज्ञान सटीकता और माप में विश्वास करता है, धर्म में ऐसी कोई व्यवस्था नहीं है।
- विज्ञान अज्ञात को देखने योग्य वास्तविकता तक लाता है, जबकि धर्म अक्सर भगवान को सामान्य मानव की पहुँच से बाहर दर्शाता है।
- विज्ञान मुक्त और प्रबुद्ध करने वाला है और सब कुछ प्रश्न करने को बढ़ावा देता है, धर्म व्यक्तियों को बांधता है और परंपरा व सामाजिक स्थिति को बनाए रखता है।
- विज्ञान तर्क पर आधारित है, धर्म पवित्र विश्वास पर आधारित है।
- विज्ञान व्यक्तिगत नवाचार को बढ़ावा देता है, धर्म अधिक सामूहिक है।
- वैज्ञानिक ज्ञान और विधियाँ सार्वभौमिक रूप से मान्य हैं, जबकि धार्मिक सिद्धांत केवल उन्हीं समुदायों में मान्य हैं जो उन्हें मानते हैं।

विज्ञान और धर्म में समानताएँ:

- दोनों का उद्देश्य कुछ प्रश्नों के उत्तर प्रदान करना है।
- दोनों के प्रकट और गुप्त कार्य और अपकारक प्रभाव हो सकते हैं।
- दोनों मानवीय बौद्धिक और भावनात्मक आवश्यकताओं का परिणाम हैं।

मैक्स वेबर के तुलनात्मक अध्ययन:

- उनके अध्ययन से पता चला कि विश्वभर के धर्म ऐसे मूल्य प्रचारित करते हैं जो तर्कसंगतता के विपरीत हैं। विज्ञान इसके विपरीत अनुभवात्मक (एम्पिरिकल) है। इसलिए वे धर्म और विज्ञान के बीच विरोध देखते हैं।
- उनके अनुसार, जैसे-जैसे तर्क और वैज्ञानिक सोच बढ़ती है, धर्म का क्षेत्र सिकुड़ता जाता है और धर्म का प्रभाव कम होता है। 'डार्विन का विकासवाद' इस विचार के विरोध में है कि भगवान ने मनुष्य को बनाया।
- **उदाहरण:** विज्ञान के प्रभाव से कई धर्मों ने खुद को अधिक तर्कसंगत बनाया है। कई धार्मिक संस्थाएँ वैज्ञानिक खोजों का उपयोग करके धर्म के प्रभाव को व्यापक बना रही हैं। टीवी और इंटरनेट का इस्तेमाल धार्मिक नेता जनता तक पहुँचने के लिए कर रहे हैं

प्रश्न: आत्मवाद की अवधारणा की चर्चा कीजिए और बताइए कि यह प्रकृतिवाद से किस प्रकार भिन्न है। (सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2024)

उत्तर : आत्मवाद (Animism) का अर्थ है आत्माओं/आत्मा में विश्वास। भूत के विचार पर ध्यान केंद्रित करने के बजाय, एडवर्ड बी टायलर ने अपने 'प्रिमिटिव कल्चर, 1871' में आत्मा के विचार पर जोर दिया।

आत्मवाद धर्म के एक ऐसे स्वरूप को संदर्भित करता है जिसमें मनुष्य अपने चारों ओर की प्रत्येक वस्तु में आत्मा की उपस्थिति पाता है।

आदिम मनुष्य ने यह भद्दा तर्क दिया कि यह 'आत्मा' ही है जो जीवित और मृत में अंतर करती है। रात में सपनों के दौरान यह

9

नातेदारी की व्यवस्थाएं

प्रश्नः भारतीय सन्दर्भ में विवाह की आधुनिक प्रवृत्तियों का विवरण दीजिए। ये परम्परागत पद्धतियों से कैसे भिन्न हैं?
(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2025)

उत्तरः भारत में विवाह एक पवित्र संस्था रहा है, जो पारिवारिक संबंधों, जाति आधारित अंतर्जातीय विवाह और सामाजिक-धार्मिक मानदंडों के विचारों से जुड़ा हुआ है। यह अब शहरीकरण, शिक्षा और डिजिटलीकरण के माध्यम से बदल रहा है। हाल के संकेतक बताते हैं कि विवाह की संस्था अब व्यक्तिगत स्वतंत्रता, समावेशिता और स्थिरता की ओर झुकाव दिखा रही है। यह पारंपरिक मान्यताओं के विपरीत है, जो व्यक्तिगत पसंद की अनुमति देती हैं, लेकिन परंपरा की निरंतरता भी बनाए रखती हैं।

विवाह के आधुनिक रुझान

विवाह में विलंब

- भारत में प्रेम और सगाई आधारित विवाह दोनों के लिए विवाह की औसत आयु अब 28 वर्ष हो गई है।
- अब करियर और व्यक्तिगत विकास को प्राथमिकता देना अधिक आम हो गया है।
- बाल विवाह निषेध अधिनियम (2006) ने भारत में बाल विवाह को कम करने में मदद की है, लेकिन ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में अंतर अभी भी स्पष्ट है।

विवाह उद्योग

- भारत में विवाह उद्योग की कुल कीमत 6 ट्रिलियन रुपये से अधिक आंकी गई है।
- विवाह उद्योग में कई मामलों में स्थायी प्रथाओं को अपनाया जा रहा है, जैसे कि सजावट के लिए पर्यावरण अनुकूल सामग्रियों का उपयोग और लेब-निर्मित हीरे।

साझेदार चयन

- भारत में अब भी लगभग 70% विवाह सगाई पर आधारित हैं, हालांकि अब टिंडर जैसी डेटिंग ऐप्स शहरी युवाओं के संबंधों को बढ़ावा दे रही हैं।
- अंतरजातीय विवाह और अंतरधार्मिक विवाह की अनुमति में भी वृद्धि हुई है।

वैकल्पिक जीवनशैली

- लाइव-इन रिलेशनशिप और ड्यूल इनकम नो किड्स (DINK) जैसी जीवनशैलियों का चलन बढ़ रहा है।
- ये जीवनशैलियाँ अब कोर्ट सिस्टम (जैसे घरेलू हिंसा अधिनियम) के माध्यम से समर्थित हैं।
- भारत में 2018 में समलैंगिकता को अपराधमुक्त करने के बाद, समान-लिंग विवाह पर लोगों की राय बनने लगी है।
- शहरी क्षेत्रों में पिछले दो दशकों में तलाक की दर भी दोगुनी हो गई है, जिसका मुख्य कारण महिलाओं का आर्थिक रूप से स्वतंत्र होना और विवाह में समानता की तलाश करना है।

विवाह समारोह

- समारोह अब परंपराओं और नवाचारी प्रथाओं दोनों को शामिल कर रहे हैं (जैसे राजस्थान में डेस्टिनेशन वेडिंग)।
- उत्तर भारतीय विवाह अब अधिक भव्य और दहेज पर आधारित होने की बजाय अनुभव आधारित और कर्ज कम करने वाले तरीके पर केंद्रित हो रहे हैं।

लैंगिक गतिशीलता

महिलाओं के लिए पारंपरिक पितृसत्तात्मक और अधीनस्थ भूमिकाओं से हटकर बदलाव आया है।

पारंपरिक प्रथाएँ बनाम आधुनिक रुझान

- **पारंपरिकः** कम उम्र में विवाह, जबरन संबंध, जाति आधारित अंतर्जातीय विवाह, संयुक्त परिवार, केवल पुरुष-महिला आधारित विवाह, अविभाज्य, दहेज से प्रेरित।
- **आधुनिकः** व्यक्तिगत स्वतंत्रता, नाभिकीय परिवार, स्थिरता, तलाक की दर बढ़ी, और समावेशिता की दिशा में प्रगति।

अतः विवाह का परिदृश्य बदल रहा है। इसमें व्यक्तिगत पसंद और अनुभव के प्रति आधुनिक प्रगतिशील सोच के साथ-साथ समावेशिता का उदय देखा जा रहा है। ये परिवर्तन मुख्यतः शिक्षा, तकनीक और कानूनी बदलाव से प्रेरित हैं। शेष चुनौतियाँ ग्रामीण और शहरी सेटिंग्स में असमानता और सामाजिक कलंक जैसी समस्याओं से जुड़ी हैं। भविष्य में विवाह के मॉडल को परंपरा और आधुनिकता के बीच संतुलन बनाते हुए अधिक समावेशी बनाने की आवश्यकता होगी।

प्रश्नः विअर नातेदारी किस प्रकार पारंपरिक नातेदारी व्यवस्था को चुनौती देती है? उदाहरण देकर प्रमाणित कीजिए।
(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2025)

उत्तरः पारंपरिक रिश्तेदारी प्रणाली का मूल हेटरोनॉर्मेटिव, जैविक और प्रजनन आधारित होता है, जो मुख्य रूप से पैतृक वंशानुक्रम, न्यूक्लियर/विस्तारित परिवार और लिंग आधारित भूमिकाओं पर केंद्रित होता है (Parsons dk functionalist दृष्टिकोण)।

- क्वियर रिश्तेदारी नई, गैर-पारंपरिक रिश्तेदारी नेटवर्क है, जिसमें चुने हुए परिवार, समलैंगिक पालन-पोषण, और लचीली संबद्धताएँ

10 आधुनिक समाज में सामाजिक परिवर्तन

प्रश्नः संधारणीय विकास से आप क्या समझते हैं? यू. एन. डी. पी. की सस्टेनेबल डेवेलप्मेंट गोल्स रिपोर्ट-2015 में प्रस्तावित संधारणीय विकास के बिन्दुओं की विवेचना कीजिए (सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2025)

उत्तरः पारंपरिक संबंध प्रणाली का मूल हेटरोनॉर्मेटिव (सांप्रदायिक), जैविक और प्रजनन आधारित है, जो मुख्य रूप से पितृवंशीय वंशानुक्रम, नाभिकीय/विस्तारित परिवार और लिंग आधारित भूमिकाओं (Parsons के कार्यात्मक दृष्टिकोण) पर केंद्रित है।

- क्वियर किन्नशिप नई, गैर-पारंपरिक संबंध नेटवर्क हैं, जिसमें चुने हुए परिवार, समान-लिंग पालन-पोषण और लचीली संबद्धताएँ शामिल हैं, जो जैविक निर्धारकवाद को चुनौती देती हैं और हेटेरोसेक्सुअलिटी को किन्नशिप का मानक न मानकर विकल्पों में से एक मानती हैं।

जैविक और प्रजनन मानदंडों की पुनःपरिभाषा

यह विचार कि परिवार का मुख्य उद्देश्य बच्चों को जन्म देना है, से हटकर स्नेह और प्रेम के बंधनों पर ध्यान केंद्रित करता है।

- यह प्रजनन को किन्नशिप का आधार मानने पर प्रश्न उठाता है।
- **उदाहरणः** भारत में समान-लिंग युगल अब सुप्रीम कोर्ट के 2022 के निर्णय के अनुसार संयुक्त रूप से बच्चों को गोद लेने में सक्षम हैं, जो "चुने हुए परिवार" बनाते हैं और हिंदू अविभाजित परिवार (HUF) संरचनाओं में पितृवंशीय उत्तराधिकार को उलटते हैं।
- **सामाजिक परिणामः** यह Durkheimian सामूहिक चेतना और प्रजनन rituals के बीच के लिंक को तोड़ता है और बहुलवादी पहचान के लिए मार्ग खोलता है।

लिंग आधारित भूमिकाओं और पदानुक्रम में विघटन

- यह देखभाल और अधिकार के क्षेत्रों में लिंग आधारित द्वैध विभाजन को हटाता है।
- पारंपरिक किन्नशिप में महिलाएं घरेलू और पुरुष उपार्जक की भूमिका निभाते हैं, जिससे पितृसत्तात्मक व्यवस्था बनी रहती है।
- **उदाहरणः** मेट्रोपोलिटन भारत में लिंग-अनुरूप परिवार जैसे मुंबई की क्वियर कम्युनिटी (Humsafar Trust परियोजनाएँ) में भूमिकाएँ उलट-पुलट होती हैं-ट्रांस महिलाएं कमाई करती हैं, सीस पुरुष बच्चे की देखभाल करते हैं-इससे "पालक" stereotype बदलता है और यह दर्शाता है कि लिंग एक प्रदर्शन है।
- **सामाजिक परिणामः** यह नारीवादी आलोचना (Ann Oakley) के अनुरूप है, जो बताती है कि क्वियर व्यवहार पितृसत्ता को कमजोर करता है और भूमिकाओं में सामाजिक समानता की स्थापना करता है।

तरलता और समावेशिता को बढ़ावा

- यह संबंधों की बहुलता (जैसे पॉलीअमोरी, सह-पालन नेटवर्क) का विचार लाता है, जो पारंपरिक, एकपत्नी/एकपति आधारित और विशेष परिवारों से अलग है।
- यह कर्तव्य की बजाय सहमति और विकल्प पर अधिक जोर देता है।
- उदाहरणः दिल्ली प्राइड नेटवर्क में क्वियर युवाओं के "चुने हुए परिवार" रक्त संबंधों से परे समर्थन नेटवर्क बनाते हैं और मानसिक स्वास्थ्य का स्रोत बनते हैं।
- सामाजिक परिणामः यह Giddens के "शुद्ध संबंधों" (pure relationships) के विचार के समान है, जो परावर्तक आधुनिकता (reflexive modernity) को सक्षम बनाता है, लेकिन जाति-कठोर क्षेत्रों में सामाजिक कलंक का कारण भी बन सकता है।

इंटरसेक्शनल तनाव

- यह वर्ग/जाति जैसे कारकों का संगम है, जो पारंपरिक किन्नशिप का सबसे समस्याग्रस्त और बहिष्कृत पक्ष उजागर करता है।
- क्वियर किन्नशिप सबसे हाशिए पर रहने वाले लोगों को amplified आवाज देती है, लेकिन इन्हें प्रतिक्रिया के रूप में लक्षित भी किया जाता है। उदाहरणः हैदराबाद में दलित क्वियर एक्टिविस्ट्स किन्नशिप सर्कल बनाते हैं, जो जातीय एकजुटता और यौन तरलता को मिलाकर ब्राह्मणीय अंतर्जातीय विवाह (endogamy) को चुनौती देते हैं।
- क्वियर किन्नशिप पारंपरिक रक्तसंबंध पर आधारित परिवार की अवधारणा को चयनात्मक संबंध (elective affinity) की ओर बदलती है, जिससे यह अधिक समावेशी बनता है और सदस्यों को अधिक स्वायत्तता देता है। यह भारत में धारा 377 (2018) की अपराधमुक्ति के बाद LGBTQ+ दृश्यता में वृद्धि के अनुरूप है।

प्रश्नः दीर्घकालिक निर्धनता को समझने में क्षमता अभाव परिप्रेक्ष्य की तुलना सामाजिक पूँजी अभाव परिप्रेक्ष्य से कीजिए। (सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2025)

उत्तरः दीर्घकालिक गरीबी वह स्थिति है जो लंबे समय तक बनी रहती है, अक्सर पांच वर्षों या उससे अधिक या पूरे जीवन तक, और यह पीढ़ियों तक हस्तांतरित हो सकती है। इसमें भूख, बुनियादी सेवाओं तक पहुँच की कमी, और सामाजिक बहिष्कार जैसी बहुआयामी

1

द्वितीय प्रश्न-पत्र

भारतीय समाज के अध्ययन के परिप्रेक्ष्य

प्रश्नः 'भारतीय विद्या परिप्रेक्ष्य, भारतीय सामाजिक व्यवस्था को समझने में महत्वपूर्ण है।' विवेचना कीजिए।

(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2025)

उत्तरः भारतीय समाजशास्त्र में पाठीय दृष्टिकोण से अभिप्राय उन प्राचीन ग्रंथों (वेद, उपनिषद, धर्मशास्त्र जैसे मनुस्मृति) के विश्लेषण से है, जिनके माध्यम से सामाजिक मान्यताओं, पदानुक्रम तथा संस्थाओं को समझा जाता है। इस दृष्टिकोण को प्राच्यविदों (जैसे मैक्समूलर) और भारतविदों (जैसे पी. वी. केन) ने विकसित किया, और यह "ग्रेट ट्रेडिशन" (रेडफील्ड) के स्रोत माने जाते हैं, जो "लिटल ट्रेडिशन" की तुलना में संस्कृतिगत रूप से अधिक औपचारिक हैं।

भारतीय समाज की समन्वित सामाजिक संरचना-जिसका वैचारिक आधार धर्म और कर्म जैसे सिद्धांत हैं तथा जिसे सामूहिक चेतना (दुर्खीम) कहा जा सकता है-जिसको समझने में पाठीय दृष्टिकोण अनिवार्य है। साथ ही इसका मूल्यांकन इसके गतिशील स्वरूप (वेबर की elective affinity) के संदर्भ में भी किया जाना चाहिए।

पाठीय दृष्टिकोण से संरचनात्मक आधारों की समझ

1. **जाति और पदानुक्रमः** ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में वर्णव्यवस्था का उल्लेख है, जिससे सामाजिक पदानुक्रम की वैचारिक व्याख्या मिलती है। ड्यूमोंट की होमो हाइरार्किकस (1966) मनुस्मृति के संदर्भ में "शुद्ध-अशुद्ध" द्वैत को स्थापित करती है, जिससे यह समझ आता है कि आधुनिकीकरण के बावजूद जाति की निरंतरता क्यों बनी रहती है।
2. **लैंगिक और पारिवारिक मान्यताएँः** मनुस्मृति में पातिव्रता और स्त्रीधर्म की अवधारणाएँ मिलती हैं, जो पितृसत्तात्मक संरचना को वैधता देती हैं। परंतु भक्ति साहित्य (जैसे आंडाल की कविताएँ) को नारीवादी विमर्श (निर्जनना) सशक्तिकरण के रूप में भी देखता है।
3. **राज्य एवं अर्थव्यवस्थाः** कौटिल्य का अर्थशास्त्र राजधर्म, शिल्प एवं श्रेणी संगठन पर प्रकाश डालता है, जिससे स्पष्ट होता है कि राजनीति-अर्थव्यवस्था सामाजिक ढाँचे से गहराई से जुड़ी थीं। यह आज की अनौपचारिक अर्थव्यवस्था में अर्द्ध-सामंती अवशेषों की व्याख्या में भी सहायक है।

पाठीय दृष्टिकोण की सीमाएँ और आलोचनाएँ

1. **स्थिर आदर्शवादः** वर्णाश्रम को आदर्श रूप में प्रस्तुत किया जाता है, जबकि वास्तविक जीवन में सामाजिक प्रवाहशीलता (श्रीनिवास की संस्कृतिकरण अवधारणा) मौजूद है। सईद के ओरिएंटलिज्म के अनुसार ब्रिटिश उपनिवेशवाद द्वारा इन ग्रंथों की गलत व्याख्या ने जाति की कठोर छवि बनाई।
2. **अभिजात पूर्वाग्रहः** ब्राह्मणवादी वर्चस्व के कारण शोषित वर्गों की आवाज अनुपस्थित है। अम्बेडकर ने इन्हें उत्पीड़न का साधन कहा और अनुभवजन्य शोध (जैसे NFHS) को अधिक उपयुक्त माना।
3. **समकालीन संदर्भ से दूरीः** वैश्वीकरण के युग में इन ग्रंथों का प्रभाव सीमित होता जा रहा है, हालांकि कुछ राजनीतिक विचारधाराएँ इन्हें पहचान-राजनीति के औजार के रूप में उपयोग करती हैं।

निष्कर्ष

भारतीय सामाजिक व्यवस्था की वैचारिक जड़ों को उजागर करने में पाठीय दृष्टिकोण अत्यंत उपयोगी है। यह संरचनात्मक-कार्यात्मक विश्लेषण का पूरक है, परंतु संपूर्ण समझ के लिए फील्डवर्क आधारित अनुभवजन्य अध्ययनों का समन्वय भी समान रूप से आवश्यक है।

प्रश्नः आप जी. एस. घुर्ये को 'सैद्धान्तिक बहुलवाद' के प्रयोगकर्ता के रूप में किस प्रकार से उचित ठहरायेंगे।

(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2025)

उत्तरः सैद्धांतिक बहुलवाद (theoretical pluralism) वह समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण है जिसमें किसी एक सिद्धांत पर निर्भर होने के बजाय अनेक सिद्धांतों-अनुभववाद, पाठीय भारतविद्या, संरचनात्मक-कार्यात्मकवाद आदिख़का समन्वय किया जाता है।

जी. एस. घुर्ये (1893-1983), जिन्हें भारतीय समाजशास्त्र का जनक कहा जाता है, इस बहुलवादी दृष्टिकोण का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण हैं। जाति, जनजाति और नगरीकरण पर उनके अध्ययन में भारत के प्राचीन स्रोतों और पश्चिमी सिद्धांतों का अद्वितीय मिश्रण मिलता है।

घुर्ये के सैद्धांतिक बहुलवाद के मुख्य तत्व

1. **भारतविद्या-पाठीय विश्लेषण का समन्वयः** उन्होंने वैदिक एवं धर्मशास्त्रीय ग्रंथों (जैसे Caste and Race in India, 1932) का उपयोग वर्ण-व्यवस्था के आदर्श रूप को समझने के लिए किया। साथ ही उन्होंने अनुभवजन्य सर्वेक्षणों को भी महत्व दिया - इससे एक ऐसी दृष्टि विकसित हुई जो न तो कठोर पोजिटिविस्ट थी, न पूर्णतः ग्रंथ-आधारित।

2 भारतीय समाज पर औपनिवेशिक शासन का प्रभाव

प्रश्नः क्या आप सोचते हैं कि ब्रिटिश शासन द्वारा किए गए नवीन आर्थिक सुधारों ने भारत की पुरानी अर्थव्यवस्था को विघटित किया है? उपयुक्त उदाहरण दे कर अपने उत्तर को प्रमाणित कीजिए। (सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2025)

उत्तरः भारत में ब्रिटिश आर्थिक सुधार (1757–1947) एक ऐसा निर्णायक परिवर्तन थे, जिनके कारण औपनिवेशिक काल से पूर्व की भारतीय सामाजिक–आर्थिक व्यवस्था का विघटन हुआ। इसे कार्ल मार्क्स की "प्राइमिटिव एक्यूम्युलेशन" (Primitive Accumulation) की अवधारणा के उदाहरण के रूप में देखा जा सकता है–अर्थात् हिंसक बेदखली की वह प्रक्रिया जो पूँजीवादी समाज के लिए मार्ग प्रशस्त करती है।

- मार्क्स के अनुसार, पारंपरिक भारतीय अर्थव्यवस्था आत्मनिर्भर ग्राम–गणराज्यों पर आधारित थी, जहाँ कारीगरी उत्पादन, कृषि परस्पर निर्भरता तथा जाति–आधारित श्रम–विभाजन मौजूद था। इस व्यवस्था को साम्राज्यवादी हितों के अनुरूप ढालने के लिए लगभग पूरी तरह नष्ट कर दिया गया।

व्यवधान के तंत्र (Mechanisms of Disruption)

- **भूमि राजस्व प्रणालियाँ और कृषि संकटः** कॉर्नवालिस द्वारा लागू स्थायी बंदोबस्त (1793, बंगाल) ने भूमि को सामुदायिक संसाधन से बदलकर निजी संपत्ति बना दिया। इससे संयुक्त परिवार और ग्राम पंचायत की पारंपरिक संरचनाएँ कमजोर हुईं। परिणामस्वरूप, जमींदारों द्वारा रैयतों का शोषण बढ़ा और "दरिद्रीकरण" (मार्क्स) की प्रक्रिया तेज हुई, जिसने ऋणग्रस्तता और अकाल को जन्म दिया।
- **औद्योगिक पतन और कारीगर अर्थव्यवस्था का विनाशः** 1813 के चार्टर एक्ट के बाद मुक्त व्यापार नीति अपनाने से भारतीय बाजारों में मैनचेस्टर के वस्त्रों की बाढ़ आ गई। इससे हथकरघा उद्योग नष्ट हो गया, जो ग्राम आत्मनिर्भरता का मुख्य आधार था।
- **कृषि का व्यवसायीकरण और खाद्य असुरक्षाः** महालवारी व्यवस्था (उत्तर भारत, 1833) जैसी नीतियों ने किसानों को नील, अफीम जैसी नकदी फसलें उगाने के लिए मजबूर किया। इससे वे वैश्विक बाजार से जुड़ गए, लेकिन आत्मनिर्भर खाद्यान्न उत्पादन को नुकसान पहुँचा और असुरक्षाएँ बढ़ीं।
  - ❖ आंद्रे बेतेइ ने इंगित किया कि इससे वर्ग विभाजन मजबूत हुआ–प्रभुत्वशाली जातियों को लाभ मिला, जबकि निम्न जातियाँ भूमि–विमुखता का शिकार हुईं।
- **धन–निकास (Drain of Wealth) और राजकोषीय शोषणः** अनुचित संधियों और होम चार्जेज के माध्यम से ब्रिटेन ने भारत की घरेलू पूँजी को बाहर निकाला, जिससे बुनियादी ढाँचे और स्वदेशी विकास में निवेश बाधित हुआ।

सामाजिक–सांस्कृतिक प्रभाव (Socio-Cultural Ramifications)

- **सामाजिक एकजुटता का क्षरणः** इन सुधारों ने जाति–आधारित अर्थव्यवस्थाओं को तोड़ा (जैसे भूमि पर क्षत्रियों का नियंत्रण कम होना)। धर्म–आधारित पारस्परिकता के स्थान पर व्यक्तिगत लाभ की प्रवृत्ति आई, जिससे पहचान संकट और सुधार आंदोलनों (जैसे ब्रह्मो समाज, 1828) का उदय हुआ।

इस प्रकार, ब्रिटिश आर्थिक सुधारों ने भारत की समग्र आर्थिक व्यवस्था को निर्णायक रूप से बाधित किया और सामंती सामंजस्य के स्थान पर पूँजीवादी शोषण को स्थापित किया–जैसा कि निर्भरता सिद्धांत (आंद्रे गुंडर फ्रैंक) में वर्णित है। इसकी विरासत आज भी कृषि संकट और असमानता के रूप में दिखाई देती है, जिससे सुधारात्मक नीतियों की आवश्यकता स्पष्ट होती है।

प्रश्नः भारत में स्वतंत्रता–पूर्व हुए सुधार आंदोलनों के प्रमुख योगदान को रेखांकित कीजिए।

(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2024)

उत्तरः स्वतंत्रता–पूर्व भारत के सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक वातावरण को सुधार आंदोलनों ने महत्वपूर्ण रूप से आकार दिया। ये आंदोलन, जो भारतीय समाज को आधुनिक बनाने के साथ–साथ इसके सांस्कृतिक मूल को बनाए रखने की मांग करते थे, कई सामाजिक–आर्थिक चुनौतियों की प्रतिक्रिया में उभरे।

सुधार आंदोलनों का योगदान

- आधुनिक भारत में सामाजिक आंदोलनों का बहुआयामी स्वरूप है। चेतना और संचार माध्यमों के विकास के साथ ही वे विकसित हुए। शिक्षा, अधिकारों के बारे में राजनीतिक जागरूकता और लामबंदी के नए साधनों ने उनके उत्थान के लिए अनुकूल वातावरण प्रदान किया।
- बहुदेववादी रीति–रिवाजों और मूर्तिपूजा का विरोध करने वाले आंदोलन, जैसे ब्रह्मो समाज और आर्य समाज ने एकेश्वरवादी मान्यताओं का समर्थन किया।
- जैसा कि स्वामी विवेकानंद और रामकृष्ण परमहंस के लेखन से पता चलता है, सुधारकों ने अंतर–धार्मिक समझ को बढ़ावा दिया।
- सामाजिक समानता को आगे बढ़ाने के लिए, महात्मा गांधी और बी आर अंबेडकर जैसे सुधारकों ने अस्पृश्यता और जातिगत भेदभाव के खिलाफ लड़ाई लड़ी।

3

ग्रामीण एवं कृषक सामाजिक संरचना

प्रश्नः भारत में ग्राम अध्ययन के लिए किसे अग्रणी माना जाता है? उदाहरण के तौर पर कुछ भारतीय समाजशास्त्रियों के ग्राम अध्ययन पर योगदान को बताइये। उनके उपागम परस्पर किस प्रकार से भिन्न हैं?

(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2025)

उत्तर. भारतीय समाजशास्त्र में ग्राम-केंद्रित अनुसंधान का उदय 1950 के दशक में हुआ, जो स्वतंत्रता के बाद राष्ट्र-निर्माण की आवश्यकताओं की प्रतिक्रिया था। इन अध्ययनों में ग्राम को समाज की सबसे छोटी इकाई के रूप में देखा गया और जाति, नातेदारी तथा सामाजिक परिवर्तन को समझने के लिए कार्यात्मकतावाद और मानवशास्त्रीय पद्धतियों का उपयोग किया गया।

- एम. एन. श्रीनिवास को ग्राम अध्ययन का अग्रदूत माना जाता है, क्योंकि उन्होंने औपनिवेशिक सामान्यीकरणों से हटकर अनुभवजन्य, अंतर्दृष्टिपूर्ण (इंसाइडर) दृष्टिकोण अपनाया।

एम. एन. श्रीनिवास की अग्रणी भूमिका

नृवंशविज्ञानात्मक सहभागिता और वैचारिक नवाचार

- द रिमेम्बर्ड विलेज (1976; 1948 में रामपुरा में किए गए क्षेत्रकार्य पर आधारित) में उन्होंने सहभागी अवलोकन (Participant Observation) की पद्धति अपनाई और ग्राम में जाति, अनुष्ठानों तथा संघर्षों का सूक्ष्म अध्ययन प्रस्तुत किया।
- उन्होंने संस्कृतिकरण (Sanskritization) और प्रभुत्वशाली जाति (Dominant Caste) की अवधारणाएँ दीं-जैसे रामपुरा में ओक्कालिगा जाति का संसाधनों पर नियंत्रण-जिससे ग्रामीण सामाजिक परिवर्तन और आधुनिकीकरण की प्रक्रिया स्पष्ट हुई।
- पद्धतिगत परिवर्तनः उनके अध्ययन भव्य ऐतिहासिक विश्लेषणों के बजाय सूक्ष्म-स्तरीय, नृविज्ञान-समाजशास्त्र के मिश्रित दृष्टिकोण पर आधारित थे, जिससे जति नेटवर्क के माध्यम से ग्राम एकता को समझा जा सका।

अन्य प्रमुख समाजशास्त्रियों का योगदान

- **एस. सी. दुबे - बहुआयामी संरचनात्मक विश्लेषणः** इंडियन विलेज (1955; शमीरपेट, हैदराबाद) में उन्होंने जाति, वर्ग और सत्ता के अंतर्संबंधों को दिखाया तथा बताया कि किस प्रकार आर्थिक संबंध (जैसे जमींदार-किरायेदार) सामाजिक व्यवस्था को सुदृढ़ करते हैं।
- **डी. एन. मजूमदार - समग्र मानवशास्त्रीय दृष्टिकोणः** रूरल सोशियोलॉजी इन नॉर्दर्न इंडिया (1958) में उन्होंने नातेदारी, अर्थव्यवस्था और अनुष्ठानों को जोड़ते हुए ग्राम को फोक-अर्बन कंटिन्यूअम के रूप में प्रस्तुत किया।
- **आंद्रे बेतेइ - जाति-वर्ग द्वंद्वः** कास्ट, क्लास एंड पावर (1965; श्रीपुरम, तंजावुर) में उन्होंने जमींदारी उन्मूलन के बाद ब्राह्मण प्रभुत्व से वर्ग-आधारित असमानताओं में परिवर्तन का विश्लेषण किया। शिक्षा के प्रभाव से जातीय अंतर्विवाह में शिथिलता और नए अभिजात वर्ग के उदय को रेखांकित किया।

दृष्टिकोणों में भिन्नता

संरचनात्मक-कार्यात्मक बनाम संघर्षवादी

- श्रीनिवास और दुबे कार्यात्मकतावादी (दुर्कीमीय) दृष्टिकोण से ग्राम को संतुलित व्यवस्था मानते हैं;
- जबकि बेतेइ ने वेबर-मार्क्सवादी संघर्ष दृष्टिकोण अपनाकर सत्ता संघर्ष और वर्ग विरोध को परिवर्तन का प्रमुख स्रोत बताया।

स्वदेशी बनाम तुलनात्मक दृष्टि

- मजूमदार का दृष्टिकोण सांस्कृतिक सार्वभौमिकताओं पर आधारित था,
- जबकि श्रीनिवास ने प्रभुत्वशाली जाति जैसी संदर्भ-विशिष्ट अवधारणाएँ प्रस्तुत कीं।

स्थिर से गतिशील विश्लेषण

प्रारंभिक अध्ययन (मजूमदार, दुबे) स्थिरता पर केंद्रित थे;

- बाद के अध्ययन (श्रीनिवास, बेतेइ) परिवर्तनशील प्रक्रियाओं को पकड़ते हैं-श्रीनिवास सांस्कृतिक अभिकर्तृत्व पर, बेतेइ संरचनात्मक विरोधाभासों पर बल देते हैं।

एम. एन. श्रीनिवास के नेतृत्व में हुए ग्राम अध्ययनों ने भारतीय समाजशास्त्र को गहराई प्रदान की और योगेंद्र सिंह की आधुनिकीकरण थीसिस के अनुरूप ग्रामीण यथार्थ को स्पष्ट किया। कार्यात्मक एकीकरण और आलोचनात्मक द्वंद्वात्मकता के बीच यह बहस आज भी प्रासंगिक है, विशेषकर प्रवासन जैसी समकालीन समस्याओं के समाधान हेतु।

प्रश्नः आंद्रे बेते के अनुसार, भारत में कृषक वर्ग की संरचना के क्या आधार हैं? विश्लेषण कीजिए।

(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2024)

उत्तर : अपनी पुस्तक "जाति, वर्ग और शक्ति" में, आंद्रे बेते ने भारत के कृषि समाज की वर्ग व्यवस्था को समर्थन देने वाले कई महत्वपूर्ण स्तंभों की पहचान की। उनका शोध भारत के ग्रामीण स्तरीकरण पर एक बहुआयामी परिप्रेक्ष्य प्रदान करता है।

कृषि सामाजिक संरचना में जाति, वर्ग, भूमि स्वामित्व, जजमानी व्यवस्था आदि शामिल होंगे जबकि कृषि वर्ग संरचना में केवल वर्ग शामिल होंगे। भूमि भारत में कृषि सामाजिक संरचना का केंद्रीय तत्व है और जाति, वर्ग और भूमि स्वामित्व आपस में घनिष्ठ रूप से जुड़े हुए हैं।

4

जाति व्यवस्था

प्रश्नः भारत में जाति संघर्ष को रोकने के लिए आप कौन से उपाय सुझाएंगे? अपने तर्क की पुष्टी कीजिए।
(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2025)

उत्तरः जाति-संघर्ष संरचनात्मक असमानताओं का परिणाम है, जो वर्ग और सामाजिक प्रतिष्ठा से जुड़ी होती हैं (मैक्स वेबर), तथा आधुनिकीकरण के असमान प्रसार से और अधिक तीव्र हो जाती हैं (योगेन्द्र सिंह)। इनके निवारण के लिए कानूनी, आर्थिक और सांस्कृतिक-तीनों स्तरों पर समग्र हस्तक्षेप की आवश्यकता है, जिससे 'सामाजिक पूँजी' (पियरे बोरद्यू) का निर्माण हो तथा विभाजनकारी पहचानों का क्षरण किया जा सके।

जाति-संघर्ष रोकने हेतु आवश्यक उपाय

1. कानूनी प्रवर्तन एवं सकारात्मक कार्रवाई को सुदृढ़ करना

अनुसूचित जाति/जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 के कठोर कार्यान्वयन हेतु फास्ट-ट्रैक न्यायालयों एवं सामुदायिक निगरानी तंत्र की व्यवस्था की जानी चाहिए। वेबर द्वारा वर्णित तार्किक-वैधानिक सत्ता 'सम्मान आधारित संस्कृतियों' को चुनौती देने का माध्यम है; आंबेडकर का संवैधानिक दृष्टिकोण (अनुच्छेद 15-17) अस्पृश्यता के खुले रूपों के क्षय में निर्णायक रहा है।

2. कौशल विकास और भूमि सुधारों के माध्यम से आर्थिक सशक्तिकरण

दलित एवं ओबीसी समुदायों के उद्यमियों के लिए स्टैंड-अप इंडिया योजना का विविधीकरण किया जाए तथा शहरी विस्तार द्वारा कृषि भूमि के अधिग्रहण को रोकने हेतु पट्टेदारी सुधार लागू किए जाएँ।

- मार्क्सवादी दृष्टिकोण के अनुसार जाति, वर्ग का छद्म रूप है; आर्थिक आत्मनिर्भरता से संरक्षक-आश्रित संबंध (श्रीनिवास) टूटते हैं। उदाहरणतः मंडल के बाद बिहार में ओबीसी (यादव) की सामाजिक गतिशीलता से यादव-राजपूत संघर्षों में कमी आई।

3. सामाजिकरण और चेतना हेतु शिक्षा

एनसीईआरटी पाठ्यक्रमों में जाति-विरोधी सामग्री को समाहित किया जाए तथा ASER-संबद्ध सामुदायिक कार्यक्रमों के माध्यम से अंतर-जातीय संपर्क को प्रोत्साहित किया जाए। दुर्खीम के अनुसार 'नैतिक शिक्षा' सामूहिक चेतना के विकास का माध्यम है।

4. राजनीतिक विकेंद्रीकरण और प्रतिनिधित्व

पंचायती राज संस्थाओं में 50% महिला आरक्षण के साथ-साथ जाति-आधारित आरक्षण को प्रभावी ढंग से लागू किया जाए तथा राजनीतिक दलों के टिकट वितरण में विविधता हेतु ऑडिट की व्यवस्था हो; उदाहरणतः ईडब्ल्यूएस श्रेणी को केवल उच्च जातियों तक सीमित न रखा जाए।

- रजनी कोठारी की भागीदारी की राजनीति सत्ता के लोकतंत्रीकरण का माध्यम है; लोकसभा में 84 अनुसूचित जाति सीटों का आरक्षण अभिजात वर्ग के वर्चस्व को कम करने में सहायक रहा है।

5. मीडिया और उत्सवों के माध्यम से सांस्कृतिक एकीकरण

सार्वजनिक मीडिया (दूरदर्शन अभियान) के माध्यम से अंतर-जातीय संवाद को बढ़ावा दिया जाए तथा भक्ति-प्रेरित मेलों जैसे समन्वयी सांस्कृतिक आयोजनों का समर्थन किया जाए।

- बेनेडिक्ट एंडरसन की कल्पित समुदाय अवधारणा के अनुसार साझा प्रतीकों के माध्यम से आदिम पहचानें क्षीण होती हैं; भक्ति-सूफी परंपराएँ ऐतिहासिक रूप से संघर्ष समाधान में सहायक रही हैं।

इस प्रकार, ये परस्पर जुड़े उपाय जाति-संघर्ष जैसी संरचनात्मक समस्या से निपटने में सहायक हैं और भारत के बहुलतावादी समाज को बहिष्करण से समावेशन की ओर ले जाते हैं। दीपांकर गुप्ता के अनुसार, वास्तविक समाधान दमन नहीं बल्कि समानता के माध्यम से जाति का 'अनुष्ठान-मुक्तिकरण' है।

प्रश्नः आपके अनुसार, भारत में जाति-व्यवस्था की निरन्तरता के लिए कौन से कारक उत्तरदायी हैं? व्याख्या कीजिए।
(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2024)

उत्तर : भारत की जाति व्यवस्था राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक और ऐतिहासिक तत्वों की जटिल अंतर्क्रिया के कारण कायम है। आधुनिकता के प्रयासों के बावजूद, यह दृढ़ता से स्थापित सामाजिक व्यवस्था उल्लेखनीय रूप से लचीली रही है।

भारत में जाति व्यवस्था के जारी रहने के लिए जिम्मेदार कारक

- जी एस घुर्ये ने इस बात पर प्रकाश डाला कि किस तरह अंतर्विवाही विवाह प्रथाएँ जातिगत पहचान को बढ़ावा देती हैं, जो कम उम्र से ही आत्मसात हो जाती हैं।
- आंद्रे बेते के अनुसार जातिगत नेटवर्क अक्सर नौकरी की संभावनाएँ पैदा करते हैं और आर्थिक अंतर-निर्भरता को बनाए रखते हैं।
- कर्म और धर्म के विचारों के माध्यम से, मनुस्मृति जैसे प्राचीन हिंदू लेखन जाति के मानकों को बनाए रखते हैं।
- लुइस ड्यूमॉन्ट ने इस बात पर जोर दिया कि कैसे स्वच्छता और अपवित्रता के विचारों द्वारा जातिगत भेदभाव को बनाए रखा जाता है।
- भारतीय राजनीति में, जाति एक शक्तिशाली लामबंदी कारक है, और राजनीतिक दल अक्सर अपने चुनावी एजेंडे को आगे बढ़ाने के लिए इसका इस्तेमाल करते हैं।
- आरक्षण कार्यक्रम और भेदभाव विरोधी कानून अनजाने में जातिगत विभाजन को मजबूत कर सकते हैं।

5 भारत में जनजातीय समुदाय

प्रश्नः औपनिवेशिक नीतियों नें भारत में जनजातियों की सामाजिक-आर्थिक दशाओं को किस प्रकार से प्रभावित किया था? विवेचना कीजिये।

(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2025)

उत्तरः ब्रिटिश प्रशासन ने भारतीय जनजातियों (आदिवासियों) को 'आदिम', अशिक्षित या 'अपराधिक प्रवृत्ति' वाला मानकर देखा और इस आधार पर बहिष्करणकारी नीतियाँ अपनाईं। इन नीतियों का उद्देश्य संसाधनों का दोहन करना था, जबकि समानांतर रूप से 'सभ्य बनाने' का मिशन थोपा गया।

औपनिवेशिक नीतियाँ और उनके सामाजिक-आर्थिक प्रभाव

1. **भूमि और वन दोहनः** वन अधिनियम (1865, 1878): वाणिज्यिक लकड़ी आपूर्ति हेतु बनाए गए इन अधिनियमों के तहत आरक्षित वन घोषित किए गए, जिससे जनजातियों के परंपरागत अधिकार समाप्त हो गए। उदाहरणतः मध्य भारत में झूम कृषि हेतु प्रयुक्त लगभग 50% भूमि से आदिवासियों को वंचित किया गया।
   सामाजिक प्रभावः प्रकृति से गहरे संबंध के टूटने (इको-फेमिनिस्ट आलोचना) के कारण दुर्खीम के अनुसार 'अनोमी' उत्पन्न हुई; मजबूरन पलायन से वे बागान श्रमिक बन गए।
2. **राजस्व और प्रशासनिक हस्तक्षेपः** (स्थायी बंदोबस्त (1793) एवं रैयतवारी व्यवस्था): नकद लगान ने सामुदायिक भूमि को निजी संपत्ति में बदल दिया।
   सामाजिक प्रभावः कुटुंब और पारस्परिक सहायता पर आधारित व्यवस्था नष्ट हो गई, सामाजिक स्तरीकरण गहरा हुआ। जनजातियाँ 'आंतरिक उपनिवेश' बन गईं। मिशनरी शिक्षा से पश्चिमी मूल्यों का प्रसार हुआ और सांस्कृतिक पहचान का क्षरण हुआ।
3. **अपराधीकरण और अलगावः** (अपराधी जनजाति अधिनियम, 1871) घुमंतू जनजातियों को 'जन्मजात अपराधी' घोषित कर निरंतर निगरानी और जबरन बसाव किया गया। लगभग 200 जनजातियाँ इसकी शिकार बनीं।
   सामाजिक प्रभावः सामाजिक कलंक बढ़ा और लेबलिंग के कारण विचलन की प्रवर्धन प्रक्रिया (बेकर) तेज हुई। 1857 के बाद मुंडा जैसे विद्रोहों का दमन हुआ, जिससे सामूहिक एजेंसी कुचल दी गई।

औपनिवेशिक नीतियों ने न केवल जनजातियों को आर्थिक रूप से दरिद्र किया बल्कि उन्हें सामाजिक-सांस्कृतिक रूप से हाशिये पर भी धकेल दिया। उनकी साक्षरता दर 50% रही, जबकि राष्ट्रीय औसत 74% था (जनगणना 2011)। समाजशास्त्रीय दृष्टि से ये नीतियाँ सत्ता की औपनिवेशिकता का उदाहरण हैं, हालांकि इन्हीं के विरुद्ध हुए प्रतिरोध आंदोलनों ने आज के सकारात्मक भेदभाव और वनाधिकार अधिनियम, 2006 जैसी नीतियों की नींव भी रखी।

प्रश्नः भारत में जनजातियों की पहचान करने में आने वाली परिभाषात्मक समस्याएँ क्या है? भारत में जनजातियों के विकास में आने वाली प्रमुख बाधाओं की चर्चा कीजिए।

(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2024)

उत्तर : ऐतिहासिक रूप से, जनजातियों को विभिन्न प्राधिकारियों द्वारा विभिन्न नामों से संबोधित किया जाता रहा है जैसे - आदिवासी, मूलनिवासी, आदिम, पिछड़े हिंदू आदि।

जनजातियों की पहचान करने में शामिल परिभाषा संबंधी समस्याएं

- जनजातियों की परिभाषा संबंधी समस्या दो अंतर-संबंधित समस्याओं से संबंधित है -
  (i) जनजातियों को परिभाषित करने की समस्या, और
  (ii) भारतीय संदर्भ में जनजातियों की समझ विकसित करना।
- ब्रिटिश काल में, प्रशासकों द्वारा विभिन्न सांस्कृतिक समुदायों की संख्यात्मक शक्ति को समझने के लिए 'जनजाति' (Tribe) शब्द का इस्तेमाल किया जाता था। गांवों में रहने वाले और कृषि करने वाले लोगों को 'जाति' (Caste) समूह कहा जाता था, जबकि जंगल में रहने वाले और आदिम व्यवसायों में संलग्न लोगों को जनजाति (Tribes) कहा जाता था।
- हटन ने उन्हें 'एबोरिजिंस' (Aborigins) और प्रसिद्ध मानवविज्ञानी एल्विन ने उन्हें 'एबोरिजियनल्स' (Aborigianls) कहा।
- हालांकि भारतीय विद्वान अंग्रेजों से असहमत थे और जाति और जनजाति को एक निरंतरता के रूप में देखते थे। एस सी रॉय का तर्क है कि भारत में 'जन' और 'जाति' लंबे समय से मौजूद थे।
- मेंडेलबाम के अनुसार भी, जाति समूहों और जनजातियों के बीच कोई सख्त सांस्कृतिक अंतर नहीं हैं।
- इसी तरह, एस सी दुबे ने जोर देकर कहा कि हिंदू धर्म की महान परंपरा और जनजातियों की छोटी परंपरा लंबे समय तक एक साथ मौजूद रही।
- एल पी विद्यार्थी और घुर्ये जैसे लोगों ने अपने दावे के ऐतिहासिक प्रमाण के रूप में प्राचीन ग्रंथों का हवाला दिया।
- ए आर देसाई ने जनजातियों को मुख्यधारा के समाज में उनके समावेश की डिग्री के आधार पर वर्गीकृत किया। बेते ने भाषा, धर्म और अलगाव की डिग्री के आधार पर भी विभिन्न जनजातीय समूहों में अंतर किया है।

6

भारत में सामाजिक वर्ग

प्रश्न: 'कृषक वर्ग संरचना आधुनिक शक्तियों के कारण परिवर्तित हो रही है।' आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए।
(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2025)

उत्तर: ग्रामीण भारत में कृषि वर्ग संरचना भूमि के स्वामित्व, श्रम संबंधों और उत्पादन के साधनों पर आधारित रही है। भारत में यह संरचना ऐतिहासिक रूप से जमींदारी, रैयतवारी जैसी व्यवस्थाओं के अंतर्गत विकसित हुई, जो मार्क्सवादी दृष्टिकोण से शोषक और उत्पादक वर्गों के बीच विरोधाभासी संबंधों को दर्शाती है।

- आधुनिक शक्तियों में हरित क्रांति, आर्थिक उदारीकरण (1991), शहरीकरण तथा नीतिगत परिवर्तन (जैसे भूमि सीमा कानून) शामिल हैं, जिन्होंने कृषि समाज में विभेदीकरण और सर्वहारीकरण (proletarianization) की प्रक्रिया को तेज किया है।

कृषि वर्ग संरचना में आधुनिक शक्तियों से हुए परिवर्तन

- **किसान वर्ग का विभेदीकरण:** छोटे और सीमांत किसान धीरे-धीरे अपनी भूमि को पूंजीवादी किसानों को पट्टे पर दे रहे हैं, जिससे ग्रामीण बुर्जुआ वर्ग का उदय हुआ है। उदाहरण के लिए, पंजाब में हरित क्रांति के परिणामस्वरूप यंत्रीकृत "बुलॉक कैपिटलिस्ट" (Rudolph - Rudolph, 1987) उभरे, जिन्होंने आत्मनिर्भर कृषि को व्यावसायिक कृषि में बदल दिया।
- **श्रम का सर्वहारीकरण:** भूमिहीन मजदूर आजीविका के लिए शहरी क्षेत्रों की ओर पलायन कर रहे हैं, जिससे पारंपरिक जजमानी व्यवस्था का विघटन हो रहा है।
- **मध्यवर्ती वर्गों का उदय:** कॉन्ट्रैक्ट फार्मिंग और एग्रीबिजनेस एलीट (जैसे महाराष्ट्र के अंगूर बेल्ट) ने जमींदार-किसान द्वैत को धुंधला कर दिया है।
- **सामंती अवशेषों का ह्रास:** 1950 के दशक के जमींदारी उन्मूलन अधिनियमों से बड़े भू-स्वामित्व का विघटन हुआ और मध्य किसान वर्ग उभरा, किंतु अनुपस्थित जमींदारों की मौजूदगी अब भी शक्ति असंतुलन बनाए रखती है।

आधुनिक शक्तियाँ: उत्प्रेरक के रूप में

- **प्रौद्योगिकी और हरित क्रांति:** HYV बीजों और सिंचाई (1960 के दशक) से उत्पादन बढ़ा, लेकिन वर्गीय असमानता भी गहरी हुई।
- **वैश्वीकरण और बाजार एकीकरण:** WTO-प्रेरित निर्यातों ने कृषि को वस्तुकरण की ओर मोड़ा, जिससे छोटे किसान वैश्विक मूल्य शृंखलाओं में समाहित हुए।
- **नीतियाँ और शहरीकरण:** भूमि सुधारों (सीलिंग कानून) से केवल लगभग 2% भूमि का पुनर्वितरण हुआ, जिसका अधिक लाभ प्रभुत्वशाली जातियों को मिला।

आलोचनात्मक परीक्षण

- **सकारात्मक परिवर्तन:** NRLM के अंतर्गत स्वयं सहायता समूहों (SHGs) ने दलित महिला किसानों को सशक्त बनाया, जिससे पितृसत्तात्मक प्रभुत्व कमजोर हुआ। कुल मिलाकर, 1960 के बाद कृषि उत्पादन में तीन गुना वृद्धि हुई, जो अकाल-निवारण में सहायक रही।
- **स्थायी असमानताएँ:** वर्ग-जाति गठजोड़ और अधिक सुदृढ़ हुआ है; सब्सिडी का बड़ा लाभ पूंजीवादी किसानों (अक्सर उच्च जातियाँ) को मिला।
- **समाजशास्त्रीय प्रभाव:** डर्काइम के अनुसार सामूहिक चेतना का क्षरण (atomization) हुआ है, किंतु साथ ही 2020-21 के किसान आंदोलनों जैसे प्रतिरोध भी उभरे हैं, जो ग्राम्शी की काउंटर-हेजेमनी की अवधारणा को दर्शाते हैं।

निष्कर्षत:, आधुनिक शक्तियों ने कृषि संरचना को विभेदीकरण और बाजार एकीकरण के संदर्भ में बदला है, किंतु यह परिवर्तन असमान और असंतुलित रहा है, जिससे नव-सामंती असमानताएँ बनी हुई हैं। यह परिघटना परावर्तित आधुनिकीकरण (reflexive modernization) का उदाहरण है।

प्रश्न: भारतीय नव मध्य वर्ग की मुख्य विशेषताओं का वर्णन कीजिये । ये पूर्व/पुराने मध्य वर्ग से किस प्रकार भिन्न हैं?
(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2025)

उत्तर: भारतीय मध्यम वर्ग वह सामाजिक समूह है जो अभिजात वर्ग (elites) और जनसामान्य (masses) के बीच स्थित होता है। मैक्स वेबर के अनुसार, यह एक सामाजिक समूह है, जो पियरे बोरदियो के शब्दों में सांस्कृतिक पूंजी का महत्वपूर्ण स्रोत है तथा सामाजिक गतिशीलता में निर्णायक भूमिका निभाता है।

- भारतीय 'पुराना' मध्यम वर्ग, जो औपनिवेशिक तथा नेहरूवादी काल (1991 से पूर्व) में विकसित हुआ, राज्य-प्रधान व्यवस्था और राष्ट्रवाद से गहराई से जुड़ा हुआ था। इसके विपरीत, 'नया' मध्यम वर्ग 1991 के बाद उदारीकरण (LPG सुधार) के परिणामस्वरूप उभरा और नवउदारवादी वैश्वीकरण का प्रतिनिधित्व करता है।

भारतीय नये मध्यम वर्ग की प्रमुख विशेषताएँ

- **आर्थिक संरचना एवं गतिशीलता:**

यह वर्ग मुख्यत: शहरी पेशेवरों से बना है, जो आईटी, वित्त, मीडिया और सेवा क्षेत्रों में कार्यरत हैं (जैसे- बेंगलुरु जैसे तकनीकी केंद्र)। इनकी सामाजिक स्थिति संपत्ति के स्वामित्व से नहीं, बल्कि बाजार-मान्य कौशल से निर्धारित होती है।

7 भारत में नातेदारी की व्यवस्थाएं

प्रश्नः नातेदारी क्या है? नातेदारी व्यवस्था के अध्ययन में जी. पी. मरडॉक के योगदान की संक्षेप में व्याख्या कीजिए। (सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2025)

उत्तरः नातेदारी सामाजिक संगठन की मूल आधारशिला है। इसमें केवल वंश (descent), विवाह (marriage) और दत्तक ग्रहण (adoption) से बने संबंध ही नहीं आते, बल्कि वे सांस्कृतिक रूप से निर्मित संबंध भी शामिल होते हैं जो विरासत, निवास और अधिकार को नियंत्रित करते हैं। इस प्रकार नातेदारी विभिन्नताओं के बावजूद लोगों को सामाजिक रूप से एकजुट करती है।

- भारत में नातेदारी की स्पष्ट अभिव्यक्ति संयुक्त परिवार प्रणाली और गोत्र व्यवस्था में दिखाई देती है। जॉर्ज पीटर मर्डॉक का कार्यात्मक (functionalist) योगदान नातेदारी के अध्ययन में एक निर्णायक मोड़ सिद्ध हुआ, क्योंकि उन्होंने तुलनात्मक और सार्वभौमिक ढाँचा प्रस्तुत किया, जिससे नृविज्ञान और समाजशास्त्र के बीच सेतु स्थापित हुआ।

नातेदारी की समाजशास्त्रीय परिभाषा एवं विशेषताएँ

- **संबंधों का ढाँचाः** नातेदारी मानव संबंधों का सबसे निकटवर्ती रूप है, जो जैविक (रक्त संबंध - जैसे वंश) तथा विवाहजन्य (संबंधता/affinity - जैसे ससुराल पक्ष) दोनों प्रकार के संबंधों को समाहित करता है। ये संबंध पारस्परिकता और दायित्वों के मुख्य वाहक होते हैं।
- **नातेदारी प्रणालियों के प्रकारः** नातेदारी प्रणालियाँ एकरेखीय (पितृवंशीय/मातृवंशीय) तथा द्विरेखीय हो सकती हैं। उदाहरणतः केरल के नायरों की मातृवंशीय व्यवस्था तथा उत्तर भारत की पितृवंशीय व्यवस्था।
- **सामाजिक संरचना में भूमिकाः** नातेदारी निवास व्यवस्था (पितृस्थानीय/मातृस्थानीय), आर्थिक संगठन (संयुक्त संपत्ति) और राजनीतिक संरचना (वैवाहिक गठबंधन) को आकार देती है।

जी. पी. मर्डॉक का नातेदारी अध्ययन में योगदान

- **Social Structure (1949) - आधारभूत वर्गीकरणः** मर्डॉक ने 30 संस्कृतियों का अध्ययन कर नातेदारी शब्दावली को 6 प्रमुख प्रकारों में वर्गीकृत किया। इससे यह स्पष्ट हुआ कि नातेदारी शब्दावली समाज की वंश परंपरा और सामाजिक एकीकरण को प्रतिबिंबित करती है।
- **तुलनात्मक कार्यात्मकताः** ब्रोनिस्लाव मालिनोव्स्की से प्रभावित मर्डॉक का मत था कि नातेदारी सार्वभौमिक आवश्यकताओं-जैसे यौन संबंधों का नियमन, प्रजनन और सहयोग-को पूरा करती है। उनके द्वारा विकसित Human Relations Area Files (HRAF) ने तुलनात्मक अध्ययन को सुदृढ़ किया।
- **गठबंधन सिद्धांत का परिष्कारः** मर्डॉक ने क्रॉस-कजिन विवाह जैसी वरीय वैवाहिक प्रथाओं को द्विपक्षीय समाजों में संतुलन बनाए रखने का माध्यम माना और इस प्रकार लेवी-स्ट्रॉस से असहमति व्यक्त की। उनके अनुसार नातेदारी संघर्ष समाधान में सहायक होती है, जैसे-गठबंधनों को सुरक्षित करने हेतु सोरोरल बहुपत्नी प्रथा।
- **आलोचना एवं विरासतः** यद्यपि मर्डॉक पर नृजातिकेंद्रिता (ethnocentrism) और नाभिकीय परिवार पर अत्यधिक जोर देने की आलोचना हुई, फिर भी उनका कार्य एक सशक्त अनुभवजन्य समाजशास्त्रीय आधार बना। भारत में आई. पी. देसाई जैसे विद्वानों के पारिवारिक सर्वेक्षण इससे प्रभावित रहे। हालांकि, मर्डॉक सत्ता और असमानता के आयामों को पर्याप्त रूप से नहीं समझ पाए।

इस प्रकार नातेदारी एक परिवर्तनशील सामाजिक संस्था है, जो पहचान और एकजुटता दोनों का केंद्र है। मर्डॉक की विस्तृत वर्गीकरण पद्धति ने नातेदारी के वैश्विक स्वरूप को समझने के उपकरण प्रदान किए, जिससे भारत में जाति-नातेदारी के संबंधों और नीतिगत प्रश्नों (जैसे महिलाओं का संपत्ति में अधिकार) का विश्लेषण संभव हुआ।

प्रश्नः क्या भारतीय समाज में असमानताओं के विभिन्न स्वरूपों को समझने के लिए पितृसत्तात्मकता एक कुंजी है? विस्तार से लिखिए। (सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2024)

उत्तरः पितृसत्ता को सिल्विया वाल्बी ने अपनी पुस्तक 'थियोराइजिंग पैट्रियार्की, 1990' में 'सामाजिक संरचनाओं और प्रथाओं की एक प्रणाली जिसमें पुरुष महिलाओं पर हावी होते हैं और उन पर अत्याचार करते हैं' के रूप में परिभाषित किया है।

भारत में पितृसत्ता और असमानता के स्वरूप

- पितृसत्ता कई संरचनाओं के माध्यम से संचालित होती है जैसे - घर में उत्पादन संबंध जहां महिलाओं को अवैतनिक श्रम के अधीन किया जाता है, श्रम बाजार में व्यवसायों का भेदभावपूर्ण आवंटन, पितृसत्ता द्वारा राजनीतिक सत्ता पर कब्जा, पुरुष हिंसा, आदि।
- वाल्बी पितृसत्ता को दो भागों में विभाजित करते हैं - निजी पितृसत्ता, जो घरों में प्रचलित है, तथा सार्वजनिक पितृसत्ता, जो महिलाओं के प्रति पितृसत्तात्मक समाज की सामूहिक प्रतिक्रिया है।
- परिवार के भीतर अधिकार संरचना, उत्तराधिकार अधिकार और अन्य हक, अनुष्ठान, श्रम विभाजन इसे प्रतिबिंबित करते हैं।
- समाज में लैंगिक भेदभाव, श्रम विभाजन - कुछ नौकरियों को अब महिलाओं का काम और कुछ को पुरुषों का काम मान लिया

8

धर्म एवं समाज

प्रश्नः राष्ट्र निर्माण से आप क्या समझते हैं? राष्ट्र निर्माण में धर्म की क्या भूमिका होती है? अपने उत्तर को विस्तार पूर्वक लिखिए। (सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2025)

उत्तरः राष्ट्र निर्माण वह सचेत प्रक्रिया है जिसके माध्यम से औपनिवेशिक या विभाजित समाज में एक साझा राष्ट्रीय पहचान और सामाजिक नेटवर्क का निर्माण किया जाता है, ताकि विभिन्न समूहों में एकता की भावना विकसित हो सके।

राष्ट्र निर्माण का अर्थ

- **सैद्धांतिक आधारः** इस अवधारणा को बेनेडिक्ट एंडरसन ने अपनी पुस्तक Imagined Communities (1983) में स्पष्ट किया। इसका अर्थ है-साझा प्रतीकों, कथाओं और संस्थानों की स्थापना, जो नातेदारी और जातीयता जैसे प्राकृतिक संबंधों से ऊपर उठकर नागरिक राष्ट्रवाद (civic nationalism) को बढ़ावा दें।
- **निर्मित सामाजिक प्रक्रियाः** राष्ट्र निर्माण कोई स्वाभाविक प्रक्रिया नहीं, बल्कि आधुनिक राज्य द्वारा संचालित एक योजनाबद्ध परियोजना है, जिसका उद्देश्य राष्ट्र-राज्य के प्रति निष्ठा विकसित करना है।
- **विविधता का एकीकरणः** भारत जैसे बहुल समाजों में यह 'ऊर्ध्वाधर' (वर्ग) और 'क्षैतिज' (जातीय/धार्मिक) विभाजनों से निपटने की प्रक्रिया है।

राष्ट्र निर्माण में धर्म की सकारात्मक भूमिका

- **राष्ट्रीय पहचान और एकता का सृजनः** पीटर बर्जर के अनुसार धर्म एक "पवित्र छतरी" (Sacred Canopy) प्रदान करता है, जिसके अंतर्गत नैतिक एकता संभव होती है। भारत में गांधीवादी समन्वयवाद ने हिंदू आचार को सार्वभौमिक मूल्यों से जोड़ा, जिससे स्वतंत्रता आंदोलन और बाद की धर्मनिरपेक्षता (अनुच्छेद 25-28) को नैतिक आधार मिला।
- **सामाजिक सुधारों में भूमिकाः** धर्म एक मूल्य-प्रणाली के रूप में नैतिक राष्ट्र निर्माण को प्रेरित करता है। भक्ति-सूफी आंदोलन इसके ऐतिहासिक उदाहरण हैं, जिन्होंने अपने उपदेशों द्वारा जातिगत भेदभाव को चुनौती दी और संवैधानिक समानता की नींव रखी।
- **राज्य सत्ता की वैधताः** दुर्खीम के कार्यात्मक दृष्टिकोण से धर्म सामाजिक मानदंडों को सुदृढ़ करता है। उदाहरणतः भारत में हज और कुंभ मेले जैसी धार्मिक गतिविधियों को सहयोग (अनुच्छेद 27) सांस्कृतिक संघवाद को बढ़ावा देता है, जिससे राज्य की वैधता सुदृढ़ होती है।

राष्ट्र निर्माण में धर्म की नकारात्मक भूमिका

- **सामाजिक विभाजन को बढ़ावाः** प्रारंभिक (primordial) धार्मिक पहचानें जातीय राष्ट्रवाद को जन्म दे सकती हैं, जिससे नागरिक राष्ट्रवाद कमजोर होता है।
- **राजनीतिक उपकरणीकरणः** जब धर्म का उपयोग राजनीतिक लामबंदी के लिए किया जाता है, तो माइकल बिलिग के 'बनाल राष्ट्रवाद' की तरह यह बहिष्करणकारी बन जाता है।
- **आधुनिकीकरण में बाधाः** वेबर के अनुसार परंपरागत धार्मिक रूढ़ियाँ तर्कसंगत-कानूनी सत्ता के विरुद्ध होती हैं, जिससे समान नागरिक संहिता (UCC) जैसे सुधारों में बाधा आती है।

अतः राष्ट्र निर्माण संरचना (संस्थाएँ) और अभिकरण (सांस्कृतिक प्रतीक) के बीच सतत संवाद है, जिसमें धर्म एक ओर एकता का माध्यम बनता है तो दूसरी ओर विभाजन का कारण भी। सफल राष्ट्र निर्माण इस बात पर निर्भर करता है कि धार्मिक विविधता को किस हद तक बहुलतावाद और सामाजिक संतुलन की शक्ति में बदला जा सकता है, विशेषकर वैश्वीकरण के दौर में।

प्रश्नः भारत में धार्मिक समुदाय, सांस्कृतिक विभिन्नता में किस प्रकार योगदान देते हैं?

(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2024)

उत्तर : भारत का जीवंत और विविधतापूर्ण समाज धार्मिक संप्रदायों द्वारा पोषित है जो इसकी सांस्कृतिक विविधता का एक बड़ा हिस्सा बनाते हैं। जी एस घुर्ये का विविधता के माध्यम से भारत की एकता पर जोर, जहां विभिन्न धर्म शांतिपूर्वक सहवास करते हैं, इस विविधता में परिलक्षित होता है।

भारत की सांस्कृतिक विविधता में धार्मिक समुदायों का योगदान

- टी एन मदन इस बात पर जोर देते हैं कि सांस्कृतिक प्रदर्शनों को बढ़ाने के लिए धार्मिक अनुष्ठानों को कैसे मिश्रित किया जा सकता है। हिंदू धर्म और इस्लाम के मिश्रण से आम भक्ति संगीत, कविता और कला बनाने के दो प्रमुख उदाहरण भक्ति आंदोलन और सूफी परंपराएँ हैं। धार्मिक सीमाओं को पार करते हुए विचारों को फैलाकर, कबीर और गुरु नानक जैसे संतों ने एक समावेशी समाज को बढ़ावा दिया।
- एम. एन. श्रीनिवास की संस्कृतिकरण की धारणा दर्शाती है कि जब निचली जातियां उच्च जाति की परंपराओं को अपनाती हैं, तो सांस्कृतिक आत्मसात कैसे होता है, जो अक्सर धार्मिक रीति-रिवाजों से जुड़ी होती हैं। इसके विपरीत, पश्चिमीकरण द्वारा नए सांस्कृतिक पहलू लाए गए, जो ईसाई मिशनरियों और औपनिवेशिक स्कूली शिक्षा से प्रेरित थे। इसके परिणामस्वरूप सामाजिक गतिविधियों में व्यापक विविधता आई।

9 भारत में सामाजिक परिवर्तन की दृष्टियां

प्रश्नः आधुनिकीकरण हो रहा है। इसमें योगदान करने वाले कारकों की भी विवेचना कीजिये।

(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2025)

उत्तरः परंपराओं का आधुनिकीकरण उन सांस्कृतिक प्रथाओं में होने वाले अनुकूलनात्मक परिवर्तनों को दर्शाता है, जो तर्कसंगतीकरण (वेबर) और आत्मपरकता/रिफ्लेक्सिविटी (गिडेंस) के अंतर्गत आते हैं। समाजशास्त्रीय दृष्टि से भारतीय परंपराएँ केवल अतीत का नहीं, बल्कि वर्तमान का भी समावेश करती हैं और वैश्वीकरण के संदर्भ में नई संकर (हाइब्रिड) पहचानें निर्मित कर रही हैं।

भारतीय परंपराओं के आधुनिक होने के संकेत

- **परिवार संस्था में परिवर्तनः** अरेंज्ड मैरिज की परंपरा अब "लव-कम-अरेंज्ड मैरिज" (श्रीनिवास, 1966) में बदल रही है, जहाँ 70% से अधिक शहरी युवा जाति की तुलना में अनुकूलता को अधिक महत्व देते हैं। यह रिश्तेदारी में आत्मपरक एजेंसी को दर्शाता है।
- **अनुष्ठानों में समायोजनः** दीपावली में प्रदूषण कम करने हेतु पटाखों के स्थान पर स्मॉग दीयों का प्रयोग बढ़ रहा है। इसी प्रकार गणेश चतुर्थी में अब प्रदर्शन के बजाय सामुदायिक सेवा (सेवा) को महत्व दिया जा रहा है, जो नागरिक बहुलता के अनुरूप है।
- **जाति में तरलताः** शहरीकरण के कारण वर्ण-जाति पदानुक्रम की कठोरता कम हुई है। अंतर्जातीय विवाह बढ़े हैं तथा दलित पेशेवर उच्च जातीय वर्चस्व को चुनौती दे रहे हैं।
- **लैंगिक पुनर्संरचनाः** पारंपरिक साड़ी अब फ्यूजन परिधान बन चुकी है। महिलाओं की सभाओं (जैसे कर्नाटक संगीत सभाएँ) में भागीदारी ने पर्दा-प्रथा को तोड़ा है और वे धर्म की पुनर्व्याख्या कर नारीवादी भूमिका ग्रहण कर रही हैं।

भारतीय परंपराओं के आधुनिकीकरण में योगदान देने वाले कारक

- **वैश्वीकरण और मीडियाः** डिजिटल प्लेटफॉर्म मिथकों का संकरण कर रहे हैं और आत्मपरक आख्यानों को बढ़ावा दे रहे हैं। प्रवासी भारतीयों की रेमिटेंस से सतत वास्तुकला वाले आधुनिक मंदिरों का निर्माण हो रहा है।
- **शहरीकरण और शिक्षाः** साक्षरता दर में वृद्धि (80.9% - PLFS 2023-24) ने आलोचनात्मक चेतना को जन्म दिया है। शहरी प्रवास के कारण संयुक्त परिवारों का विघटन हुआ है और घरेलू कार्यों में समानता बढ़ी है।
- **नीतिगत हस्तक्षेपः** सकारात्मक कार्रवाई (जैसे RTE अधिनियम 2009) से वंचित वर्ग सशक्त हुए हैं, जिससे संस्कृतिकरण - पाश्चात्यीकरण (श्रीनिवास) को बढ़ावा मिला है। NEP 2020 व्यावसायिक कौशल को सांस्कृतिक पाठ्यक्रमों से जोड़ती है।
- **महिला सशक्तिकरणः** महिला श्रम भागीदारी दर (FLFPR) में वृद्धि (41.7% - 2023-24) पितृवंशीय व्यवस्थाओं को चुनौती दे रही है। स्वयं सहायता समूहों (SHGs) के माध्यम से सामुदायिक संरचना सामूहिक एजेंसी से पुनर्परिभाषित हो रही है।

निष्कर्षतः, भारतीय परंपराओं का आधुनिकीकरण चयनात्मक संरक्षण और नवाचार की प्रक्रिया है, न कि केवल क्षरण। यह समन्वयात्मक संस्कृति की सामाजिक दृढ़ता को दर्शाता है, जो एक ओर एनॉमी (दुर्खीम) को कम करती है और दूसरी ओर असमानताओं के बीच अपनी स्थिति बनाए रखती है। हालांकि, परंपराओं के वस्तुकरण का जोखिम बना हुआ है, अतः समावेशी संकरण के लिए न्यायपूर्ण नीतियों की आवश्यकता है।

प्रश्नः क्या आप सोचते हैं कि भारत जैसे समाज में नियतविकासीय परिवर्तन विभेदीकरण के द्वारा होते हैं? क्या आप नियतविकासीय प्रक्रिया में निरन्तरता को देखते हैं? अपना उत्तर उपयुक्त उदाहरण सहित विस्तार से दीजिए।

(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2025)

उत्तरः ऑर्थोजेनेटिक परिवर्तन वे आंतरिक (एंडोजेनस) परिवर्तन हैं जो समाज की अपनी सांस्कृतिक परंपराओं से उत्पन्न होते हैं और बाहरी प्रभाव (हेटेरोजेनेटिक परिवर्तन) के बजाय आंतरिक विभेदीकरण (संरचनात्मक जटिलता और विशेषज्ञता) को बढ़ाते हैं। रॉबर्ट रेडफील्ड ने इसे लोक-शहरी निरंतरता के संदर्भ में समझाया।

विभेदीकरण के माध्यम से ऑर्थोजेनेटिक परिवर्तन

- **विभेदीकरण की प्रक्रियाः** समाज की आंतरिक सांस्कृतिक गतिशीलता से विशेषीकृत उप-संरचनाएँ विकसित होती हैं। उदाहरणस्वरूप, वैदिक वर्ण व्यवस्था 3,000 से अधिक जातियों में विकसित हुई, जिनकी विशिष्ट व्यावसायिक भूमिकाएँ थीं (जैसे लोहार)। इससे बिना औपनिवेशिक हस्तक्षेप के श्रम विभाजन (दुर्खीम) गहरा हुआ।
- **जाति समायोजन और गतिशीलताः** संस्कृतिकरण की प्रक्रिया में निम्न जातियाँ उच्च जातियों के अनुष्ठानों का अनुकरण करती हैं। तमिलनाडु के नाडार समुदाय ने मंदिर प्रवेश आंदोलनों के माध्यम से ताड़ी-तपाने वालों से व्यापारी वर्ग में संक्रमण किया।
- **शहरी रिश्तेदारी अनुकूलनः** संयुक्त परिवारों से नाभिकीय परिवार बने, किंतु अनुष्ठानों की निरंतरता बनी रही।

10 भारत में ग्रामीण एवं कृषि रूपांतरण

प्रश्नः 'भूस्वामित्व खेतीहर से गैर खेतीहर स्वामियों को हस्तान्तरित किये जाने से भारतीय समाज रूपान्तरण (ट्रांसफार्मेशन) हो रहा है।' उपयुक्त उदाहरण दे कर अपने उत्तर की पुष्टी कीजिये। (सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2025)

उत्तरः भूमि का खेती करने वालों (लघु/सीमांत किसान) से गैर-खेती करने वालों (कॉर्पोरेट, रियल एस्टेट डेवलपर्स, शहरी अभिजात वर्ग) के हाथों में जाना मार्क्सवादी समाजशास्त्र में वर्णित 'आदिम संचय (Primitive Accumulation)' का उदाहरण है, जो कृषि भारत में पूँजीवादी प्रवेश को दर्शाता है।

- 1991 के उदारीकरण और भूमि अधिग्रहण, पुनर्वास एवं पुनर्स्थापन अधिनियम (LARR, 2013) के बाद यह प्रक्रिया तीव्र हुई है, जिससे सामाजिक संरचनाओं में परिवर्तन आया और वर्ग ध्रुवीकरण, प्रवास तथा पहचान परिवर्तन जैसी प्रवृत्तियाँ उभरीं-जिन्हें आंद्रे बेतेइले के ग्रामीण असमानताओं के अध्ययन से समझा जा सकता है।

आर्थिक परिवर्तन

- **सर्वहारा बनना और आजीविका का क्षरणः** खेती करने वाले परिवार (अधिकतर OBC/SC) उत्पादन के साधनों से वंचित होते हैं, जिससे भूमिहीन श्रमिकों की संख्या बढ़ती है। यह थॉर्नर द्वारा वर्णित अर्ध-सामंती से पूँजीवादी समाज में संक्रमण जैसा है और कृषि संकट को बढ़ाता है।
- **पूँजी का संकेंद्रणः** गैर-खेती मालिक भूमि का उपयोग SEZ/उद्योगों के लिए करते हैं, जिससे GDP बढ़ता है परंतु द्वैतवादी अर्थव्यवस्था बनती है। उदाहरणस्वरूप, 2024 में गुजरात में हरित ऊर्जा हेतु 500+ एकड़ भूमि अधिग्रहण (अदानी नेतृत्व) से 2,000 आदिवासी परिवार विस्थापित हुए और किरायेदार/रेंटियर वर्ग उभरा।

सामाजिक परिवर्तन

- **जाति और वर्ग का पुनर्संयोजनः** ऐतिहासिक रूप से ऊँची जातियों ने मध्यस्थता की। आज दलित भूमिधर कॉर्पोरेट खरीद से अल्पकालिक लाभ पाते हैं, किंतु इससे दीर्घकाल में हाशियाकरण बढ़ता है।
- **लैंगिक असमानताओं का विस्तारः** कृषि श्रम में 75% योगदान देने वाली महिलाएँ भूमि हस्तांतरण के बाद उत्तराधिकार से बाहर रह जाती हैं।

सांस्कृतिक और स्थानिक परिवर्तन

- **ग्रामीण-शहरी निरंतरता का विघटनः** भूमि हस्तांतरण से डिट्रैडिशनलाइजेशन बढ़ता है; संयुक्त परिवार और ग्राम एकजुटता कमजोर होती है (दुर्खीमीय एनॉमी)।
- **प्रतिरोध और एजेंसी का उदयः** भूमि अधिग्रहण के विरुद्ध जन-आंदोलन उपालंबित एजेंसी को जन्म देते हैं। 2025 में ग्रेट निकोबार ट्रंक रोड (500 एकड़) के विरोध में बने आदिवासी गठबंधन, सिंगूर (2006) की परंपरा को डिजिटल सशक्तिकरण के साथ आगे बढ़ाते हैं और इको-फेमिनिस्ट आंदोलनों को जन्म देते हैं।

निष्कर्षतः, भूमि का यह हस्तांतरण समाज को कृषि-आधारित संबंधों से नवउदारवादी विखंडन की ओर ले जाता है। अतः न्यायपूर्ण संक्रमण हेतु किरायेदारी सुधार जैसी नीतियाँ आवश्यक हैं, जिससे असमानताओं को कम किया जा सके।

प्रश्नः भारत में ग्रामीण उद्योगों के पतन के लिए उत्तरदायी विभिन्न कारकों का वर्णन कीजिए। (सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2025)

उत्तरः भारत के ग्राम उद्योग-जिनमें हस्तशिल्प, हथकरघा तथा कृषि-आधारित इकाइयाँ शामिल हैं-पूर्व-औपनिवेशिक काल में आत्मनिर्भर ग्रामीण अर्थव्यवस्था का आधार थे। कार्ल मार्क्स के एशियाई उत्पादन पद्धति के अनुसार, जाति-आधारित गिल्ड न केवल उत्पादन करती थीं बल्कि सामाजिक एकजुटता भी बनाए रखती थीं।

- इन उद्योगों का पतन-जो कभी पूर्व-औपनिवेशिक निर्यात का लगभग 25% थे और अब 5% से भी कम (MSME मंत्रालय, 2024) रह गए हैं-एक समाजशास्त्रीय विच्छेद को दर्शाता है। कार्ल पोलान्यी के शब्दों में यह अर्थव्यवस्था का समाज से 'विसंलग्नीकरण' (disembedding) है, जो औपनिवेशिक पूँजीवाद और नवउदारवादी परिवर्तनों का परिणाम है।

औपनिवेशिक शोषण और औद्योगिक अपकर्ष

- **संसाधनों की निकासी और बाजार में सस्ते माल की बाढ़ः** ब्रिटिश नीतियों (1813 का चार्टर अधिनियम) ने मुक्त व्यापार को बढ़ावा दिया और मैनचेस्टर के सस्ते वस्त्रों से भारतीय बाजार भर दिया, जिससे हथकरघा उद्योग नष्ट हो गए।
- **राजस्व व्यवस्थाओं द्वारा स्वायत्तता का क्षरणः** स्थायी बंदोबस्त ने भूमि को एक वस्तु बना दिया। इससे शिल्पों से श्रम का पलायन हुआ और नकदी फसलों का उत्पादन अधिक लाभकारी बन गया, जिससे गिल्डों की पारस्परिकता कमजोर पड़ी।

आधुनिकीकरण और संरचनात्मक परिवर्तन

- **शहरीकरण और प्रवासन का दबावः** 1991 के बाद की LPG सुधारों के बाद ग्रामीण क्षेत्रों से बड़े पैमाने पर पलायन हुआ (जनगणना 2021: अंतर-राज्यीय प्रवासन का 30%), जिससे

11 भारत में औद्योगिकरण एवं नगरीकरण

प्रश्नः भारत में नगरीय बस्तियों की वृद्धि में नए रुझानों का उपयुक्त उदाहरणों के साथ परीक्षण कीजिए।
(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2024)

उत्तर : 'शहरीकरण' की प्रक्रिया शहरों और कस्बों की जनसंख्या वृद्धि को दर्शाती है। समाजशास्त्रीय रूप से, यह शहरी जीवन शैली के ग्रामीण इलाकों में प्रसार को भी दर्शाता है। शहरीकरण की प्रक्रिया में जनसांख्यिकीय के साथ-साथ सामाजिक आयाम भी होते हैं।

शहरी बस्तियों के विकास में हालिया रुझान

- शहरीकरण के साथ, कृषि क्षेत्र से गैर-कृषि क्षेत्र में आर्थिक गतिविधियों का रूपांतरण हुआ, और श्रम विभाजन और कार्य के विशिष्टीकरण के साथ गतिविधियों के द्वितीयक और तृतीयक क्षेत्रों में लगी आबादी का अनुपात बढ़ा।
- शहरीकरण की प्रक्रिया ने पारंपरिक संस्थाओं और व्यवहार के पैटर्न और सामाजिक नियंत्रण के कामकाज में विघटन को जन्म दिया।
- जीवन की गुणवत्ता और शहरी बुनियादी ढांचे को बढ़ाने के लक्ष्य के साथ अत्याधुनिक तकनीक के साथ अत्यधिक विकसित महानगरीय क्षेत्रों का सरकार के नेतृत्व में निर्माण।
- ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों के बीच की रेखाएँ धुंधली होने के कारण संकर वातावरण का निर्माण। दिल्ली के आसपास के परिदृश्य मुख्य रूप से कृषि से हटकर भूमि के मिश्रित उपयोग में तेजी से बदल गए हैं।
- पहले से मौजूद प्रमुख शहरों का बड़े महानगरीय क्षेत्रों में विकास, जैसा कि दिल्ली-क्षेत्र के राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र में होता है। यह भारतीय समाजशास्त्री आशीष नंदी द्वारा प्रस्तुत "अनपेक्षित शहर" सिद्धांत के अनुरूप है।
- नवी मुंबई जैसे बड़े शहरों के आसपास छोटी शहरी बस्तियां विकसित की जा रही हैं, ताकि केंद्रीय जिलों में यातायात को कम किया जा सके और उचित मूल्य पर आवास उपलब्ध कराया जा सके।

ये पैटर्न दिखाते हैं कि भारत के शहरी परिदृश्य को आंतरिक प्रवास, वैश्वीकरण और आर्थिक उदारीकरण की जटिल अंतर्क्रियाओं ने कैसे आकार दिया है। इन विकासों ने भारतीय शहरों को स्थान और समाज दोनों के संदर्भ में और अधिक असमान बना दिया है।

भारत का शहरी विकास विभिन्न प्रकार की प्रवृत्तियों को प्रदर्शित करता है, जो समतापूर्ण एवं सतत विकास के लिए अवसर और कठिनाइयां दोनों प्रस्तुत करते हैं।

प्रश्नः क्या श्रमिक प्रवास तथा अनौपचारिक क्षेत्र में कोई सम्बन्ध है? भारतीय संदर्भ में तर्कसंगत उत्तर दीजिए।
(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2024)

उत्तर : भारत में अनौपचारिक क्षेत्र और श्रम प्रवासन एक-दूसरे से घनिष्ठ रूप से जुड़े हुए हैं, जो सामाजिक संरचनाओं और शहरी अर्थव्यवस्थाओं को प्रभावित करते हैं। इस संबंध के विकास से संबंधित महत्वपूर्ण परिणाम हैं और यह जटिल सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों का परिणाम है।

प्रवासन किसी भी देश की जनसंख्या के वितरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, तथा किसी भी क्षेत्र में श्रम शक्ति की वृद्धि को निर्धारित करता है। इस प्रकार प्रवासन समाज में सामाजिक परिवर्तन का एक महत्वपूर्ण लक्षण है।

श्रम प्रवास और अनौपचारिक क्षेत्र

- भारतीय शहरों में अनौपचारिक क्षेत्र ग्रामीण-शहरी प्रवास के परिणामस्वरूप बढ़ रहा है, जो महानगरीय संभावनाओं जैसे आकर्षण कारकों और ग्रामीण गरीबी जैसे दबाव कारकों से प्रेरित है।
- निर्माण, लघु-स्तरीय विनिर्माण, स्ट्रीट वेंडिंग और घरेलू काम जैसे अनौपचारिक काम अक्सर प्रवासी श्रमिकों द्वारा किए जाते हैं। भारत के आर्थिक सर्वेक्षण के अनुसार, 90% से अधिक श्रमिक असंगठित क्षेत्र में कार्यरत हैं, जिनमें से एक बड़ा प्रतिशत प्रवासी हैं।
- अनौपचारिक क्षेत्र में प्रवेश की कम बाधाएं इसे औपचारिक शिक्षा या सामाजिक संबंधों के बिना प्रवासियों के लिए आदर्श बनाती हैं। हालाँकि, इससे सामाजिक लाभों की कमी, नौकरी की असुरक्षा और दुर्व्यवहार की चपेट में आने की संभावना बढ़ जाती है।
- गरीबी, कम उत्पादकता, बेरोजगारी, प्राकृतिक संसाधनों की कमी और प्राकृतिक आपदाएँ कुछ 'पुश फैक्टर' हैं। बेहतर रोजगार के अवसर, उच्च वेतन, बेहतर कार्य परिस्थितियां और शिक्षा, स्वास्थ्य आदि जैसी जीवन की बेहतर सुविधाएँ 'पुश फैक्टर' हैं।

हालांकि, बुनियादी स्वास्थ्य सेवा और सामाजिक सुरक्षा लाभों तक उनकी पहुंच की कमी के साथ-साथ कार्यस्थल पर न्यूनतम सुरक्षा आवश्यकताओं के कार्यान्वयन के कारण, प्रवासी श्रमिकों को अक्सर खतरनाक कामकाजी परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है। उदाहरण के लिए, शहरों में प्रवासी निर्माण श्रमिकों के पास सही सुरक्षा साधनों तक पहुंच नहीं हो सकती है, जिससे वे दुर्घटनाओं और चोटों के प्रति अधिक संवेदनशील हो जाते हैं।

भारत के श्रम बाजार की गतिशीलता और आर्थिक संरचना, श्रम प्रवास और अनौपचारिक क्षेत्र को अभिन्न रूप से जोड़ती है, जिसके लिए सावधानीपूर्वक नीतिगत उपायों की आवश्यकता होती है।

12

राजनीति एवं समाज

प्रश्नः स्वतंत्र भारत में राजनीतिक गतिशीलता के सामाजिक आधारों की विवेचना कीजिए। क्या पिछले 60-70 वर्षों में इन में (आधारों में) कोई परिवर्तन हुआ है?
(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2025)

उत्तरः स्वतंत्र भारत में राजनीतिक लामबंदी को सामाजिक विभाजनों-जाति, वर्ग, धर्म और क्षेत्र-के राजनीतिक एकत्रीकरण के रूप में समझा जा सकता है, जो चुनावी गठबंधनों (मैक्स वेबर के 'स्थिति-समूह') के माध्यम से लोकतंत्रीकरण का प्रमुख साधन बने।

- प्रारंभिक दशकों में, यह प्रक्रिया उच्च-जाति अभिजात वर्ग तक सीमित रही, जो कांग्रेस के प्रभुत्व के अंतर्गत एमिल दुर्खाइम की 'सांगठनिक एकजुटता' का उदाहरण थी। बीते 60-70 वर्षों में, आदिम पहचान से साधनात्मक पहचान की ओर संक्रमण ने लोकतांत्रिक विस्तार तो किया, किंतु विखंडन को भी गहरा किया (क्रिस्टोफ जाफ्रलो)।

प्रारंभिक सामाजिक आधार (1950-1970)

- **जाति एक प्राथमिक आधारः** ब्राह्मण एवं राजपूत जैसे उच्च-जातीय नेतृत्व ने कांग्रेस के माध्यम से संरक्षण-ग्राहक (Patron-Client) संबंधों द्वारा जनसमर्थन जुटाया।
- **वर्ग एवं कृषि अभिजात्यः** हरित क्रांति से लाभान्वित समृद्ध किसान कांग्रेस के प्रमुख वोट-बैंक बने, जबकि ग्रामीण सर्वहारा निष्क्रिय रहा-जो मार्क्स के 'मिथ्या चेतना' सिद्धांत को पुष्ट करता है।
- **क्षेत्रीय एवं भाषायी लामबंदीः** 1956 का राज्य पुनर्गठन तेलुगु एवं पंजाबी आंदोलनों को शांत कर संघीय ढाँचे में समाहित करने में सफल रहा, जिससे पृथकतावाद के बिना उप-राष्ट्रीयता विकसित हुई।
- **धर्मनिरपेक्ष-धार्मिक संतुलनः** गांधीवादी विचारधारा ने सांप्रदायिकता को नियंत्रित रखा, यद्यपि विभाजन की छाया अल्पसंख्यक तुष्टीकरण में दिखाई देती रही।

पिछले 60-70 वर्षों में परिवर्तन

- **जाति का लोकतंत्रीकरण (1980 के बाद):** मंडल आयोग (1990) ने OBC सशक्तिकरण को बढ़ावा दिया। सपा (यादव आधार) और बसपा (अंबेडकरवादी दलित चेतना) जैसी पार्टियाँ उभरीं। उच्च जातियाँ भाजपा के साथ एकजुट हुईं-जिससे ऊर्ध्वाधर से क्षैतिज लामबंदी (आंद्रे बेटीय) की ओर बदलाव हुआ।
- **वर्गीय तरलता एवं नगरीकरणः** 1991 के उदारीकरण के बाद मध्यवर्गीय पेशेवर एवं असंगठित श्रमिक राजनीति के नए आधार बने-जैसे प्रवासी श्रमिकों की भूमिका AAP की 2015 दिल्ली विजय में दिखी।
- **धार्मिक ध्रुवीकरणः** राम जन्मभूमि आंदोलन (1992) के साथ हिंदुत्व राजनीति उभरी, जिसे जाफ्रलो ने 'रणनीतिक अनिवार्यवाद' कहा। इसके प्रत्युत्तर में मुस्लिम समूहों का सामरिक एकीकरण (केरल, तमिलनाडु) देखने को मिला।
- **क्षेत्रीय सशक्तिकरणः** 1990 के दशक का गठबंधन युग संघीय ढाँचे को सुदृढ़ करने वाला रहा-जैसे DMK का द्रविड़ आंदोलन और TMC का बंगाली उपसंजमतदवाद।

निष्कर्ष

राजनीतिक लामबंदी के सामाजिक आधार अभिजात-केन्द्रित सहमति से बहुलतावादी समावेशन की ओर बढ़े हैं, किंतु यह प्रक्रिया अस्थिरता एवं बहुसंख्यकवादी प्रवृत्तियों (जैसे आरक्षण विवाद) से भी युक्त है। राजनी कोठारी के 'State Against Democracy' के अनुसार, ये परिवर्तन बहुकेंद्रित समाजों में निरंतर चलने वाली राजनीतिक मोल-भाव की प्रक्रिया को दर्शाते हैं, जहाँ पहचान-आधारित राजनीति और सार्थक समानता के बीच संतुलन आवश्यक है।

प्रश्नः संवैधानिक प्रावधानों ने किस अर्थ में अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों की सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक दशाओं को परिवर्तित किया है? आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए। (सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2025)

उत्तरः अनुसूचित जातियों (SC) और अनुसूचित जनजातियों (ST) के लिए संवैधानिक प्रावधान डॉ. बी. आर. आंबेडकर की जाति के उन्मूलन की अवधारणा पर आधारित सकारात्मक भेदभाव (affirmative action) का रूप हैं, जिनका उद्देश्य वर्ण-जाति व्यवस्था में निहित गहरी संरचनात्मक असमानताओं को समाप्त करना है।

सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन

1. शैक्षिक सशक्तिकरण

अनुच्छेद 15(4) के अंतर्गत आरक्षण व्यवस्था तथा छात्रवृत्तियों की व्यवस्था से साक्षरता में वृद्धि हुई है, जिससे उच्च शिक्षा तक पहुँच संभव हुई। यह एम.एन. श्रीनिवास की संस्कृतिकरण (Sanskritization) की प्रक्रिया का एक रूप है, जहाँ दलित स्नातक पारंपरिक कर्मकांडीय पदानुक्रम को चुनौती दे रहे हैं।

2. आरक्षण के माध्यम से आर्थिक अवसरों का विस्तार

अनुच्छेद 16(4) के अंतर्गत सरकारी नौकरियों में आरक्षण (SC के लिए 15%, ST के लिए 7.5%) से रोजगार स्तर में वृद्धि हुई है। PLFS 2023-24 के अनुसार SC कार्यबल भागीदारी 54.2% तक पहुँच गई है, जो 1990 के दशक में मात्र 40% थी। इससे पेशेवर क्रीमी लेयर का निर्माण हुआ है।

13 आधुनिक भारत में सामाजिक आंदोलन

प्रश्नः आपके अनुसार महिलाओं की स्थिति के उत्थान के लिए कौन से सामाजिक सुधार आन्दोलन ने सबसे अधिक प्रभावशाली भूमिका का निर्वाह किया है? व्याख्या कीजिए।
(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2025)

उत्तरः महिलाओं की स्थिति में सुधार एक वैश्विक लक्ष्य रहा है, जिसके अंतर्गत अनेक सामाजिक सुधार आंदोलनों ने पितृसत्ता, कानूनी असमानताओं और सांस्कृतिक रूढ़ियों को चुनौती दी।

- भारत में 19वीं शताब्दी के सामाजिक सुधार आंदोलन-राजा राममोहन राय (ब्रह्म समाज), स्वामी दयानंद सरस्वती (आर्य समाज), ईश्वरचंद्र विद्यासागर तथा ज्योतिराव फुले-महिलाओं की स्थिति में सुधार के लिए सर्वाधिक प्रभावी सिद्ध हुए। इन आंदोलनों ने वैचारिक और कानूनी समर्थन के माध्यम से पितृसत्तात्मक ढाँचों को तोड़ा और जाति-लिंग अंतर्संबंधों पर प्रश्न उठाए।

महिलाओं की स्थिति में सुधार में सामाजिक सुधार आंदोलनों की भूमिका

1. सती प्रथा का उन्मूलन और विधवा सुधारः

राजा राममोहन राय ने सती प्रथा के विरुद्ध संघर्ष किया, जिसके परिणामस्वरूप 1829 में इसका उन्मूलन हुआ। सती विनियमन अधि नियम ने इसे ब्राह्मणवादी उत्पीड़न मानते हुए समाप्त किया (मार्क्सवादी आधार-अधिरचना दृष्टिकोण)। ईश्वरचंद्र विद्यासागर ने महिलाओं की शिक्षा को बढ़ावा दिया और 300 से अधिक बालिका विद्यालयों की स्थापना की। उनके प्रयासों से विधवा पुनर्विवाह अधिनियम, 1856 पारित हुआ, जिससे विधवाओं की आर्थिक-सामाजिक पराधीनता कम हुई।

2. महिला शिक्षा और सशक्तिकरण

ज्योतिराव फुले द्वारा 1848 में स्थापित बालिका विद्यालयों और सावित्रीबाई फुले के साक्षरता अभियान ने महिलाओं को केवल गृहिणी मानने वाली कार्यात्मकतावादी धारणा (पार्सन्स) को तोड़ा। 1901 तक महिला साक्षरता दोगुनी हुई, जिससे नई पहचानें उभरीं (गिडेन्स)। 13 वर्ष से कम आयु में विवाह करने वाली लड़कियों का अनुपात 80% से घटकर 1940 के दशक तक 50% हो गया।

3. कानूनी और सांस्कृतिक परिवर्तन

इन आंदोलनों के समर्थन से आयु-सहमति अधिनियम, 1891 पारित हुआ, जिसने विवाह की न्यूनतम आयु बढ़ाकर 12 वर्ष की और प्रजनन शोषण को आंशिक रूप से रोका। इन प्रयासों ने प्रभुत्वशाली धर्म के विरुद्ध उपेक्षित वर्गों की आवाज को सशक्त किया। समय के साथ दहेज मृत्यु जैसी सामाजिक बुराइयों में भी गिरावट देखी गई।

निष्कर्ष

सामाजिक सुधार आंदोलनों ने संरचनात्मक परिवर्तन लाकर महिलाओं को दमन की स्थिति-जिसे दुर्खीमीय एनॉमी कहा जा सकता है-से निकालकर सक्रिय सामाजिक अभिकरण की ओर अग्रसर किया। एम. एन. श्रीनिवास की संस्कृतिकरण और पाश्चात्यीकरण की अवधारणाओं के संदर्भ में, इन आंदोलनों ने पारंपरिक रीतियों का धर्मनिरपेक्षीकरण किया और पश्चिमी उदारवाद को स्वदेशी आलोचना से जोड़ा। यद्यपि इन सुधारों की पहुँच मुख्यतः शहरी-अभिजात वर्ग तक सीमित रही, फिर भी इन्होंने 20वीं शताब्दी के नारीवाद-जैसे चिपको आंदोलन में दिखने वाले पर्यावरणीय नारीवाद-की आधारशिला रखी। इस प्रकार, सामाजिक सुधार आंदोलन ठोस कानूनी उपलब्धियों और सांस्कृतिक परिवर्तन के कारण महिलाओं को वस्तु से विषय (object ls subject) के रूप में स्थापित करने में सबसे प्रभावी सिद्ध हुए।

प्रश्नः भारत में दलित आंदोलनों ने उनकी पहचान बनाने को किस प्रकार से सहज बनाया है? विश्लेषण कीजिए।
(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2025)

उत्तरः भारत में दलित आंदोलन, जो हजारों वर्षों से चली आ रही जातिगत उत्पीड़न की व्यवस्था के विरुद्ध प्रतिक्रिया के रूप में उभरे, सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिवर्तन के प्रमुख कारक रहे हैं। इन आंदोलनों ने अनुसूचित जातियों को एक ऐसे समूह से बदलकर, जिसने अपनी ही हीनता को आत्मसात कर लिया था, आत्मसम्मान और आत्म-मान्यता से युक्त समुदाय में परिवर्तित किया है।

- फुले का सुधारवाद, आंबेडकरवादी उग्रवाद और बसपा का चुनावी प्रयोग-इन सभी धाराओं ने मिलकर एक राजनीतिक रूप से सचेत दलित चेतना का निर्माण किया, जिसमें सांस्कृतिक पुनरुत्थान और संरचनात्मक परिवर्तन के लिए संघर्ष का समन्वय दिखाई देता है।

ऐतिहासिक एवं वैचारिक आधार

- **आत्मसम्मान और सांस्कृतिक पुनर्प्राप्तिः** ज्योतिबा फुले द्वारा स्थापित सत्यशोधक समाज (1873) ने ब्राह्मणवादी मिथकों को चुनौती देकर और शूद्रों को मूल निवासी (बहुजन) के रूप में प्रस्तुत कर पहचान पुनर्निर्माण की दिशा में पहला कदम उठाया।
- **आंबेडकर का बौद्धिक एवं राजनीतिक नेतृत्वः** बहिष्कृत हितकारिणी सभा (1924) की स्थापना और महाड़ सत्याग्रह (1927) ऐसे ऐतिहासिक क्षण थे, जब उत्पीड़ितों ने उत्पीड़कों के विरुद्ध प्रतिरोध किया और 'अछूतों' की स्थिति को निष्क्रिय पीड़ित से सक्रिय नागरिक में बदला।

14

जनसंख्या गतिकी

प्रश्नः समलैंगिक विवाह, भारत में जनसंख्यात्मक गतिकी के लिए किस प्रकार उत्तरदायी हैं? विवेचना कीजिये।
(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2025)

उत्तरः भारत में जनसंख्या परिवर्तन, जहाँ कुल प्रजनन दर (TFR) लगभग 2.0 है और युवा जनसांख्यिकीय लाभांश मौजूद है, अनेक कारकों-जैसे प्रजनन, मृत्यु दर, प्रवासन और सामाजिक-सांस्कृतिक तत्वों-से प्रभावित होता है।

- समलैंगिक विवाहों का भारत की जनसंख्या गतिकी पर प्रभाव प्रत्यक्ष रूप से अत्यंत सीमित और मुख्यतः अप्रत्यक्ष है, क्योंकि अनुमानतः केवल 2-10% जनसंख्या ही यौन एवं लैंगिक अल्पसंख्यक के रूप में पहचान रखती है।

कानूनी एवं जनसांख्यिकीय परिप्रेक्ष्य

- **कानूनी मान्यता का अभावः** सुप्रियो बनाम भारत संघ (2023) में सर्वोच्च न्यायालय ने समलैंगिक विवाह को मान्यता देने से इंकार किया और कहा कि यह विधायिका का विषय है। जनवरी 2025 में भी इस निर्णय की पुष्टि हुई।
- **परिवार निर्माण पर सीमाएँः** कानूनी मान्यता न होने के कारण समलैंगिक जोड़े दत्तक ग्रहण, सरोगेसी, उत्तराधिकार और अन्य पारिवारिक अधिकारों से वंचित हैं। इसलिए प्रजनन जैसे जनसांख्यिकीय संकेतकों पर उनका प्रत्यक्ष प्रभाव नगण्य है।

प्रजनन एवं जनसंख्या वृद्धि पर प्रभाव

- **जैविक प्रजनन में सीमित योगदानः** समलैंगिक दंपति बिना किसी मध्यस्थ के जैविक रूप से संतान उत्पन्न नहीं कर सकते। हालांकि भारत में इसका प्रभाव सीमित है, क्योंकि महिला शिक्षा और गर्भनिरोध के कारण TFR पहले से ही प्रतिस्थापन स्तर (2.1) से नीचे है।

अप्रत्यक्ष सामाजिक-सांस्कृतिक प्रभाव

- **विवाह में विलंब और सामाजिक मानदंडों में परिवर्तनः** समलैंगिक अधिकारों की स्वीकृति से विवाह की उम्र में विलंब और सामाजिक व्यवहार में परिवर्तन संभव है।
- **प्रवासन और शहरीकरणः** महानगरों में 'पिंक इकोनॉमी' (जैसे मुंबई) के कारण क्वीयर समुदाय का प्रवासन बढ़ता है, जिससे शहरी क्षेत्रों में कम प्रजनन दर (TFR 1.6) को बल मिलता है।
- **लैंगिक समानता से जुड़ावः** समलैंगिक अधिकारों का आंदोलन महिलाओं के सशक्तिकरण, गर्भनिरोध की पहुँच और जेंडर-न्यूट्रल नीतियों के साथ जुड़ता है।

चुनौतियाँ और वैश्विक तुलना

- **कलंक और सामाजिक बहिष्कारः** लगभग 30% क्वीयर युवा पारिवारिक अस्वीकृति के कारण बेघर हो जाते हैं, जिससे उनके जीवन-चक्र और प्रजनन इच्छाएँ प्रभावित होती हैं।
- **अतिरंजित आशंकाएँः** यह धारणा कि LGBTQ+ स्वीकृति से जनसंख्या घट जाएगी, तथ्यात्मक रूप से गलत है।

निष्कर्षः

भारत में समलैंगिक विवाहों को कानूनी मान्यता न होने के कारण उनका जनसंख्या गतिकी पर प्रत्यक्ष प्रभाव अत्यंत सीमित है। हालांकि, सामाजिक प्रगतिशीलता और समावेशी मूल्यों को बढ़ावा देकर ये अप्रत्यक्ष रूप से TFR की स्थिरता और वृद्ध जनसंख्या संकट से जुड़ी आशंकाओं को कम करने में सहायक हो सकते हैं।

प्रश्नः भारत में लिंगानुपात के क्षेत्रीय उतार-चढ़ाव की प्रकृति और उसके कारणों का उल्लेख करते हुए विवेचना कीजिए।
(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2023)

उत्तरः जनसांख्यिकीय अवधारणा में लिंगानुपात को किसी भी जनसंख्या में प्रति 1000 पुरुषों पर महिलाओं की संख्या के रूप में परिभाषित किया जाता है।

भारत में असंतुलित लिंगानुपात चिंता का विषय है तथा यह भौगोलिक अंतरों के साथ देश के सामाजिक-आर्थिक, सांस्कृतिक और ऐतिहासिक विभाजन को प्रतिबिंबित करता है।

लिंगानुपात में क्षेत्रीय भिन्नताएँ तथा संबंधित कारण

- **उत्तरी भारतः** हरियाणा, पंजाब और उत्तर प्रदेश जैसे भारत के उत्तरी राज्यों में निम्न लिंगानुपात हेतु पितृसत्तात्मक मानदंड उत्तरदायी हैं, जो महिलाओं की तुलना में पुरुषों को अधिक प्राथमिकता देते हैं। जन्म के समय बेटों की चाह कन्या भ्रूण हत्या को बढ़ावा देती है। जन्म के पश्चात भी लड़कियों के साथ दोयम दर्जे का व्यवहार इनकी मृत्यु दर में वृद्धि करता है।
- **दक्षिणी भारतः** तमिलनाडु और केरल जैसे दक्षिणी राज्यों में लिंगानुपात अधिक है।
- उच्च साक्षरता दर, बेहतर एवं पर्याप्त स्वास्थ्य सुविधाएं तथा एक अधिक न्यायसंगत समाज जहां महिलाओं को समान स्थान दिया जाता है, उच्च लिंगानुपात हेतु उत्तरदायी हैं। केरल के विभिन्न क्षेत्रों में मातृसत्तात्मक पद्धति प्रचलित है, जिससे यहां लिंगानुपात उच्च बना हुआ है।
- **पूर्वी भारतः** पश्चिम बंगाल और ओडिशा जैसे पूर्वी राज्यों में भी लिंगानुपात अधिक है। इन राज्यों में हरियाणा, पंजाब एवं उत्तर प्रदेश की भांति जन्म के समय बेटियों पर बेटों को अनावश्यक प्राथमिकता देने का प्रचलन सीमित है। हालाँकि, पितृसत्तात्मक दृष्टिकोण, अशिक्षा और गरीबी के कारण, बिहार और झारखंड जैसे राज्यों में लिंगानुपात कम है।
- **पश्चिमी भारतः** उत्तरी राज्यों की भांति गुजरात एवं राजस्थान जैसे पश्चिमी राज्यों में भी पितृसत्तात्मक सामाजिक व्यवस्था

15 सामाजिक रूपांतरण की चुनौतियां

प्रश्नः क्या आप सोचते हैं कि कानून भारत में बाल श्रम को समाप्त करने के लिए सक्षम है? टिप्पणी कीजिए।
(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2025)

उत्तरः भारत में बाल श्रम समाज की उन सामाजिक संरचनाओं का स्पष्ट उदाहरण है जो इस समस्या के आर्थिक शोषण के पहलू को गंभीरता से नजरअंदाज करती हैं। ए.आर. देसाई के पूँजीवादी अविकास पर आधारित मार्क्सवादी विश्लेषण के अनुसार, एक समूह का शोषण जाति, लिंग और कुटुंब (किनशिप) जैसे कारकों से गहराई से जुड़ा होता है।

- कानून वेबर की 'तर्कसंगत-कानूनी सत्ता' (Rational-Legal Authority) की अभिव्यक्ति हैं और उनका उद्देश्य पारंपरिक समाजों में आधुनिक मानक स्थापित करना है। इसके बावजूद वे बाल श्रम को पूरी तरह समाप्त करने में असफल रहे हैं। 2024 में भी भारत में 13.8 करोड़ बाल श्रमिक मौजूद थे (ILO)। कानून बाल श्रम को समाप्त करने के बजाय मुख्यतः इसे नियंत्रित ही कर पाए हैं।

कानूनी ढाँचा और उद्देश्य

निषेधात्मक प्रावधान

- बाल श्रम (निषेध एवं विनियमन) अधिनियम, 1986 (2016 में संशोधित) 14 वर्ष से कम आयु के बच्चों को खतरनाक क्षेत्रों (जैसे खनन, पटाखा उद्योग) में काम करने से रोकता है तथा 14-18 वर्ष के किशोरों के नियोजित कार्य को विनियमित करता है, जो ILO कन्वेंशन 182 के अनुरूप है।
- संविधान का अनुच्छेद 24 बाल श्रम पर प्रतिबंध लगाता है और अनुच्छेद 39(फ) राज्य को बच्चों के कल्याण की दिशा में कार्य करने का निर्देश देता है।

प्रवर्तन तंत्र

- राष्ट्रीय बाल श्रम परियोजना (NCLP) शिक्षा के माध्यम से बाल श्रम उन्मूलन का प्रयास करती है; 2024 में 44,902 बच्चों को बचाया गया (मंत्रालयी आँकड़ों के अनुसार)।

उन्मूलन में समाजशास्त्रीय बाधाएँ

- **गरीबी और पारिवारिक बाध्यताः** ग्रामीण क्षेत्रों में बाल श्रम परिवार की आय बढ़ाने का साधन बन जाता है (UNICEF 2024 के अनुसार 50% बच्चे कृषि में संलग्न हैं)।
- **जाति और लैंगिक पदानुक्रमः** जहाँ उच्च जातियाँ सामाजिक नेटवर्क और निरीक्षण तंत्र से लाभ उठाकर बाजार व अनौपचारिक क्षेत्रों से दूरी बनाए रखती हैं, वहीं दलित बालिकाएँ शहरी क्षेत्रों (जैसे दिल्ली में घरेलू काम) में अधिक असुरक्षा का सामना करती हैं।
- **प्रवर्तन की कमजोरी और राज्य की उदासीनताः** श्रम निरीक्षण की विफलता और भ्रष्टाचार के कारण दोषी बच निकलते हैं; 2016 के संशोधनों ने पारिवारिक उद्यमों की अनुमति देकर अनजाने में बाल श्रम को बढ़ावा दिया।

परिणाम और रूपांतरण

- **अनपेक्षित परिणामः** बाल श्रम पर प्रतिबंध से बच्चों की मजदूरी घटी, जिससे वे छिपे हुए और अपंजीकृत क्षेत्रों में काम करने को मजबूर हुए (जैसे 2016 के बाद शिवकाशी पटाखा उद्योग। इससे भूमिगत बाल श्रम बाजार और स्कूल छोड़ने वाले बच्चों की संख्या बढ़ी।

अतः, कानूनों ने सबसे गंभीर प्रकार के शोषण को सीमित तो किया है, परंतु गहरे सामाजिक ढाँचों से टकराव के कारण वे बाल श्रम को पूरी तरह समाप्त नहीं कर पाए हैं-जैसा कि निर्भरता सिद्धांत (Dependency Theory) बताता है। सार्वभौमिक बुनियादी आय, जाति-संवेदनशील शिक्षा जैसे व्यापक उपायों द्वारा ही कानून को दमन के औजार से मुक्त कर मुक्ति के साधन में बदला जा सकता है।

प्रश्नः भारतीय समाज में वृद्धों के लिए प्रवर्तनशील निजी तथा सार्वजनिक संजाल (नैटवर्क) एवं सहायक व्यवस्थाएँ क्या हैं? वृद्धों की देख-रेख करने वालों के सामने आने वाली चुनौतियों को कम करने के लिए किये जाने वाले प्रयासों के सुझाव दीजिए। (सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2025)

उत्तरः समाजशास्त्र के अनुसार, भारत में वृद्धावस्था पारंपरिक संयुक्त परिवार प्रणाली (एम. एन. श्रीनिवास) से शहरीकरण के कारण एकल (न्यूक्लियर) परिवारों की ओर संक्रमण को दर्शाती है, जिससे बुजुर्ग सामाजिक रूप से अलग-थलग और असुरक्षित हो रहे हैं।

- जहाँ निजी नेटवर्क पारिवारिक पारस्परिकता पर आधारित हैं, वहीं सार्वजनिक नेटवर्क वेबर की तर्कसंगत-कानूनी सत्ता के तहत कल्याणकारी भूमिका निभाते हैं। देखभालकर्ता, विशेषकर महिलाएँ, भूमिका तनाव (टैल्कट पार्सन्स) का अनुभव करती हैं; अतः उनके लिए सहायक और टिकाऊ वृद्धावस्था नीतियों की आवश्यकता है।

निजी नेटवर्क और सहायता प्रणालियाँ

- **पारिवारिक देखभालः** संयुक्त/विस्तारित परिवार भावनात्मक, आर्थिक और दैनिक देखभाल प्रदान करते हैं, जो पितृ-भक्ति (धर्म) की अवधारणा पर आधारित है।